एम.ए.(हिंदी) उत्तरार्द्ध सैमेस्टर-III

प्रश्नपत्र 301 : आधुनिक हिन्दी काव्य-II

अध्ययन सामग्री : 1 (1-4)

मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी-विभाग

प्रश्नपत्र 301 : आधुनिक हिंदी काव्य-II

अध्ययन सामग्री : 1 (1-4)

अनुक्रम

1.	अज्ञेय और उनकी कविता	1-7
2.	शमशेर और उनकी कविता	8-12
3.	रघुवीर सहाय और उनकी कविता	13-21
4.	नागार्जुन और उनकी कविता	22-27

संपादक
हिन्दी विभाग

मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

1. अज्ञेय और उनकी कविता

कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आदि विधाओं को अपनी सक्रियता से समद्ध करने वाले अज्ञेय मूलतः कवि थे। उनका जन्म, 1911 में कसया नाम जगह पर शिविर में हुआ और पत्नीविहीन, संतानविहीन अज्ञेय का निधन दिल्ली में, 1987 को हुआ था। 'भारत' 'प्रतीक' 'नया प्रतीक' का संपादन उन्होंने किया; कविता में सर्जनात्मक हस्तक्षेप करने वाले तार सप्तक (आदि) का संपादन भी उन्होंने किया। जीवन के कर्मठ होने को इतना काफी था पर सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय की बात कहीं ज्यादा थी। असाध्य वीणा, चक्रांत शिला आदि अपनी अनेक कविताओं का अनुवाद किया। उनकी कविताओं के अनुवाद भारतीय भाषाओं के साथ जर्मन, स्वीडिश आदि भाषाओं में भी हुए। अज्ञेय की सक्रियता का रूप भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गुप्त क्रांतिकारी दल में शामिल होना था। उनके इस आयोजक रूप का दर्शन अनेक लेखन-चिंतन-शिविरों के आयोजन में हुआ।

अज्ञेय के रहस्यवाद दर्शन जितना पाया जाता, वह नागार्जुन में नहीं दिखाई देता वे स्वप्न लोक छोड़ पाते। उनमें तार्किकता पाई जाती है; अधिकांशत; वे समस्याओं का हल खोजते दिखाई पड़ते हैं; जहाँ कहीं-कहीं उन्हें पीड़ा का बोध भी होता था। अज्ञेय के रहस्यवाद में पायी जाने वाली विशेषताएँ समर्पण, अहं का विलयन आदि कहीं नहीं मिलतीं। 'बूँद सहसा उछली' नामक यात्रावृत्त के शुरू में ही वे पाठक को बताते थे कि ''फालतू असबाब से छुट्टी पाते हुए सहज भाव से यात्रा करना सीखते चलना ही मेरा उद्देश्य रहा– विदेशाटन में ही नहीं, जीवन-यात्रा में भी।'' यात्रा करने का अर्थ– यात्रा करना 'सीखते चलना'। यह जिज्ञासा थी। उत्कट है। जीने का तरीका है। भावुकता का निषेध करती आधुनिकता।

यही कारण है कि अज्ञेय की बहुत-सी कविताओं की आधार-सामग्री ही नहीं, भाषा भी वैचारिक है। ''जितना तुम्हारा सच है उतना ही कहो'' विचार या सिद्धांत है। ''वह भी अभिव्यंजना है'' भी विचार है। ''ये उपमान मैले हो गए हैं'' जैसे अनेक कविता-वाक्य थे, जो मूलतः विचार थे। अनुभूतियाँ अगर आती भी हैं। तो उन विचारों को बल देने के लिए अतः इस पर विचार होना चाहिए कि अज्ञेय की जानी-मानी कविताओं में दर्शन या वैचारिकता सचमुच अनुभूति में घुल सकी या नहीं।

ऐसा भी नहीं है कि अज्ञेय की कविताएँ रूमानियत से रहित थीं। ''तुम्हारी देह/मुझको कनक चम्पे की कली है/दूर ही से स्मरण में भी गंध देती है''। स्मरण गंध से युक्त है। ऐन्द्रिक है। वह जिस अनुभूति को लेकर आई है, पाठक को वह वास्तविक लगती, वह उसे अपनी साँसों में अनुभव करता। ध्यातव्य यह भी है कि इस अनुभूति का किसी विचार या सिद्धांत या दर्शन से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं।

वस्तुतः कविता का काम यह होता भी नहीं कि वह किसी सिद्धांत या दर्शन का काव्यानुवाद प्रस्तुत करे। कविता अनुभूति की जमीन से उगती है। पाठकीय अनुभूति को आंदोलित करती थी। उसको और संवदेनशील, और लयात्मक काव्यात्मक बनाती है। मनुष्य इस तरह और बेहतर बनता है। अज्ञेय की अनेक कविताएँ अनुभूतियों और अनुभवों से संपन्न होने के कारण जीवंत हैं। अनुभव प्रसंगों के माध्यम से भी व्यक्त होते हैं। ऐसा ही प्रसंग है–''शाम मंत्री जी ने पुस्तक विमोची/सवेरे आलोची/प्रकाशक प्रसन्न हुआ/ लेखक भी धन्न हुआ/दुःख यही कि पढ़ने की किसी ने नहीं सोची''। हल्की-फुलकी लगने वाली इन कविता-पंक्तियों का अर्थ कम है।

साहित्य-जगत् की दिखावटी साहित्य-निष्ठा उसके पाखंड को चीरती उसकी दरिद्रता तक सीधे पहुँचती है यह कविता। विडंबना है कि जिस पुस्तक का इतना सम्मान होता है, उसका वही उपयोग नहीं हो पाता, जिसके लिए उसका जन्म हुआ। यह नकारात्मक बन जाता है। विडंबना है। व्यंग्य को जन्म देती थी यह विडंबना। इस व्यंग्य में अनन्य

सर्जक की वेदना शामिल है। खास तौर से उस सर्जक की, जिसके दौर में कविता का श्रव्य से पठ्य में रूपांतरण हो रहा था और जो इस प्रक्रिया को संभव करने वालों में अग्रणी था। साहित्य की दुनिया में हुए अनेक परिवर्तनों में अज्ञेय की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही। इनमें परिवर्तन कविता के लय-रूप में होने वाला परिवर्तन था।

छंदों के बंधन अज्ञेय से पहले निराला तोड़ चुके थे। मुक्तछंद काव्य-भाषा का रूप बन रहा था। 'तार सप्तक' के कवियों की विशेषता यह थी कि उन्होंने लय और छंद के प्रति भी इस खुलेपन को अपनाया। अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम चुना। खुलापन पहले भी रहा था लेकिन उसके संगठित रूप से स्वागत संभवतः पहलेपहल 'तार सप्तक' में ही हुआ। 'प्रयोग' की स्वीकृति और घोषणा इसी खुलेपन के स्वागत का रूप थी। दकियानूस संकीर्णता-विरोध रवैया पूरे संकलन का नारा था। कहा जा सकता है कि इसके द्वारा हिंदी कविता की लय के रूप में वह परिवर्तन पूरी शिद्दत के साथ शुरू हुआ, जो मुक्त छंद से होते हुए 'पद्याभास गद्य' या 'गद्य-कविता' तक पहुँचा। इस परिवर्तन में अज्ञेय का योगदान था।

मुक्त छंद का मुक्त प्रवाह अज्ञेय की काव्य-भाषा का स्वभाव था। उनकी अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं कि बोलकर पढ़ी जाएँ तो अबाध रूप से निरंतर पढ़ी जा सकें। अटूट लय से संपन्न हैं वे। कविता के पद्यात्मक से गद्यात्मक होने के दौर में उस परिवर्तन का भरपूर पक्षधर होने पर भी उसकी लय को अटूट और अबाध बनाए रखना अपने आप में ऐतिहासिक चुनौती थी। अज्ञेय इसका सामना सक्षमता के साथ करने वाले कवियों मे रहे। काव्य-भाषा में उनकी कविताओं ने पाठक को यह भरोसा सफलतापूर्वक दिलाया कि सारे परिवर्तन के बावजूद कविता पठ्य बन जाए पर प्रवाह उसमें रहेगा। उसे याद रखा जा सकेगा। अज्ञेय का अबाध वाचन संभव होगा।

अज्ञेय लेखन को बहुत महत्त्व देते थे। उन्होंने कहा भी है, ''उस साहित्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती, जिसमें कोई अस्मिता नहीं बोलती। जिससे हम बने हैं, उसे पहचानते हुए उसे अभिव्यक्ति दें तो वर्तमान और भविष्य हमारे हैं, नहीं तो हम कहीं के नहीं'' यह कथन उनका विचार-मात्र न होकर उनके भाव की ध्वनि भी है। कविता का पैदायशी रूप छंद को माना जाता है लेकिन छंद रूप है, शरीर है। आत्मा उसकी है—लय/अज्ञेय का दौर कविता के हाथों से छूटने का दौर है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि उनकी कविताओं में छंद जब छूटे तो भी लय नहीं छूटी। छंदों का रूप-भर, शरीर मात्र छूटा। आत्मा बरकरार रही। अज्ञेय के लिए महत्त्वपूर्ण आत्मा थी। खुद की।

छंद, लय के विविध व्यवस्थित आकार बनाता था। मुक्तछंद ने लय के विविध उन्मुक्त आकार बनाए। फिर मुक्तछंद में जितना छंद था, वह भी टूटा। कविता छंद-मुक्त हुई। जीवन में लय के रूप अपार थे। छंद-युक्त हो जाने का अर्थ लय-मुक्त हो जाना नहीं था। यही कारण है कि जीवन में लय के अपार रूपों के लिए कविता में लयहीन ज्यादा बनी। कवि को पहले से ज्यादा स्वतंत्रता मिली। यह बात और है कि स्वतंत्रता जिस दायित्व की माँग करती है और जिस दायित्व-बोध के कारण जीवन को लय करने में लय बनी रहती है, उसके अभाव में उसे अराजकता बनते देर नहीं लगती। कालांतर में कविता की लय को यह अराजकता भी देखनी और सहनी पड़ी।

'असाध्य वीणा' को बतौर उदाहरण देखा जा सकता है। इसमें व्यक्तित्व का केंद्र बताते संबोधनों का, संवादों-एकालापों का, कहानी के वर्णन का, लय का उपयोग है। भाषा का प्रवाह अटूट है। जीवन की लय संभव करने में ध्वनियों की है। इन्हीं का है वह 'स्वर-कम्पन' जो प्रियवंद को प्रियंवद से लेता है। उसके अहं का विलयन करता है। उसकी भाव को कोमल बनाता है। नमन करता है। वीणा को साधने के लिए उसके मानस को तैयार करता है। प्रकृति के प्रति सजग संवेदनशीलता देखी जा सकती थी।

पर्यावरण की स्थूल-सूक्ष्म गतिविधियों को पूरी कुशलता के साथ व्यक्त करते हुए। मनुष्य को प्रकृति के अधिकाधिक योग्य बनाते हुए। रचना को संवेदनात्मक उद्देश्य की ओर अग्रसर करते हैं। छंदों के बंधन से काव्य-भाषा की मुक्ति का भरपूर लाभ इस कविता को हुआ है।

अज्ञेय की शब्द-सजगता और काव्य-भाषा कविता के उस भाग में भी सामने आती है, संगीत को सब अलग-अलग सुनते हैं। यह अलगाव विविधता है। वह लय 'आतंक मुक्ति का आश्वासन'। किसी के लिए 'बटुली में बहुत दिनों के बाद।' किसी के लिए चिड़िया की 'चहक'। किसी के लिए 'मंदिर की घंटा-ध्वनि',।

असाध्य जब सध जाती है तो लय लोक से भी पैदा होता है और लोक के लिए भी। महत्त्वपूर्ण यह कि अज्ञेय की कविता-क्षमता इसमें ध्वनि प्रतिध्वनित होती है।

कविता, भाषा के सबसे सक्षम रूपों में है, अच्छी भाषा यदि अपने-आपमें सिद्धि है, जो कि वह है किसी में कोई शब्द क्यों रखा गया है, वहाँ उसी शब्द के होने का अभिप्राय क्या है और उस कविता के भाषा-ढाँचे में उसकी जगह की अर्थवत्ता क्या है। इस शब्द-सजगता से कविता का श्रव्य से पठ्य में रूपांतरण सार्थक होता है। साथ ही कविता के छंद-रूप में होने वाले परिवर्तन में अज्ञेय की अग्रणी भूमिका है। ऐसी अज्ञेय की कविताएँ अनेक हैं।

अज्ञेय का व्यक्तित्व है। उनमें उनके व्यक्तित्व का वर्णन है तो – परंपरा और सामाजिकता का महत्त्व भी है।

(ख) नदी के द्वीप

(यह कविता अब आपके पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं है।)

'नदी की द्वीप' :

अज्ञेय चेतस् कवि हैं। काल में क्षण, समाज में व्यक्ति और भाषा में शब्द को महत्व देते हैं। 'नदी के द्वीप' उनकी प्रतिनिधि कविताओं में हैं। इसका ही वाक्य है–''हम नदी के द्वीप हैं।'' एकबारगी लग सकता है कि यह किसी समूह की कविता है। जैसे-जैसे कविता बढ़ती है, स्पष्ट होने लगता है कि इसका 'हम' पारस्परिक नहीं और अंत तक पूरी तरह साफ हो जाता है कि 'हम' इसकी शैली-मात्र है। वस्तुतः 'हम' के आवरण में यह 'मैं' की कविता है। यही कारण है कि यदि 'हम' की जगह 'मैं' रखकर इसे पढ़ा जाए तो अर्थ में कोई आधारभूत फर्क नहीं पड़ता। 'हम' को समूह मान भी ले तो इसका पाठ वे अनेक 'मैं' करना होगा, जिनकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।

स्रोतस्विनी बहती हुई नदी है। वह जिन द्वीपों को आकार देती, वे समान नहीं किसी के हाने से कोण बनते हैं, किसी के आकार लेने से अन्तरीप। अन्तरीप अर्थात् धरती का वह नुकीला हिस्सा, जो जलराशि में दूर तक चला गया हो। द्वीपों को बहती नदी ने गढ़ा। सब द्वीपों के बनने की अपनी-अपनी प्रक्रियाएँ। सबके अपने-अपने रूपकार, अपने-अपने मिजाज।

कविता के ढाँचे में मुख्यतः अवयव हैं। बहती नदी, और द्वीप। नदी पार्श्व में हैं पर धुँधले नहीं। द्वीपों को आकार देते उतने ही साफ दिखलाई देते हैं जितने द्वीप। यह बात और है कि उनकी सार्थकता इस स्पष्टता में उतनी नहीं, जितनी द्वीपों को देने में है। स्पष्टता कवि की रचना कुशलता का परिणाम है, नदी के प्रवाह को यथावत् न रहने देने वाले द्वीप उसकी कविता में आकर नदी की सार्थकता बन जाते हैं। यह नदी के द्वीपों में प्राकृतिक रूप से नहीं है।

यह इस्तेमाल हर सफल कवि करता है। बिंबों का प्रतीकवत् इस्तेमाल अज्ञेय को सिद्ध है। बिंब की स्पष्टता और प्रतीक की अनेकार्थता से उनके अनेक काव्य-चित्र संपन्न हैं। नदी, और द्वीप का भी लक्षण है यह। नदी अगर समाज है तो वह व्यक्ति। नदी है तो वह क्षण। नदी भाषा है तो वह शब्द। संदर्भों में उसका अलग-अलग पाठ संभव है। बावजूद इसके है तो द्वीप ही। अतः पाठों में महत्त्व का आधार इकाई है। मानदंड इकाई ही है।

इकाई समूह का हिस्सा है। उसके अस्तित्व में समूह की ऊर्जा शामिल है लेकिन है वह समूह से स्वतंत्र। उसका अपना अस्तित्व ही नहीं, व्यक्तित्व भी है। द्वीप स्रोतस्विनी का ऋणी है। उसके प्रति वह समर्पित भी है पर उसका समर्पण 'स्थिर' है। इस स्थिरता में स्वतंत्र व्यक्तित्व मौजूद है। अपने इस व्यक्तित्व को वह प्रेम करता है। सजग प्रेम। इस कारण वह बहती नदी का ऋण स्वीकार करते हुए भी भावुक होकर उसके साथ बहता नहीं है। बहना, रेत हो

जाना है। यह स्वतंत्रता से भी वंचित हो जाना है, व्यक्तित्व से भी। रेत होने पर भी वह नदी नहीं, नदी की ही हो सकता है। द्वीप का बह जाना किसी के लिए भी वांछनीय नहीं। नदी से प्रेम इतना भी नहीं कि अपनी अस्मिता को द्वीप खो दे।

स्वतंत्र व्यक्तित्व द्वीप की नियति है। यह नियति वरदान हो सकती है, हो सकती है लेकिन शाप तो नहीं ही है।

बहना नदी का स्वभाव है। यह स्वभाव सदा बना रहे, सहज बना रहे, इसी में सबका भला है। निर्देश, नदी के सहज प्रवाह की आवश्यकता पर दिया गया जोर है। इस जोर के साथ इकाई का अपनी ऊर्जा पर अडोल भरोसा भी है। प्रवाह अगर कभी बाढ़ बन जाए, नदी अगर 'काल-प्रवाहिनी' हो जाए, अगर रेते हो जाए तो 'फिर छनेंगे हम'। साफ है कि यह भी द्वीप के लिए है।

अभिप्राय कविता का है कि हर हाल में द्वीपत्व बना रहे। सामाजिक परिवर्तन व्यक्ति को नष्ट न करें समय, क्षण को सुरक्षित रखे। ऐसा न हो पाने पर भी व्यक्ति, क्षण और शब्द नष्ट नहीं हो सकते। नदी की स्थिति इतनी ही है कि द्वीप का जब पुनः उदय हो जाए तो वह उसके किनारों को छोड़े, उन्हें आकार और संस्कार दे। यह जीवन की प्रक्रिया है।

'नदी के द्वीप' इस प्रक्रिया का चित्र है। घनघोर निराशा में भी आशा चमकती है। भाषा मुक्त छंद के मुक्त प्रवाह की मुक्त लय सँजोए है। नागरिक की भाषा है यह। किसी बहुपठित नागरिक की भाषा। बोलचाल से इसका कोई लेना-देना नहीं। द्वीप के किनारे के लिए यहाँ 'सैकत कूल' का प्रयोग है। द्वीप नदी की गोद में नहीं बैठे हैं। बहती हुई नदी 'स्रोतस्विनी' है। कवि उसे संबोधित करते हुए 'मातः' कहता था। अत्यंत शब्द-सजग कवि। चुन-चुनकर शब्दों को कविता में बैठाता हुआ।

व्यक्ति समाज के लिए नहीं, समाज व्यक्ति के लिए है। शब्द भाषा के लिए नहीं, भाषा शब्द के लिए है। कवि के इकाई-चेतस् होने का यह अर्थ था।

इकाई समूह से भिन्न है। विशिष्ट है। समूह की सार्थकता उसके लिए होने में है। समूह से लेते हुए भी वह स्वतंत्र रूप से दीप्त है। इसे स्वचेतना की दीप्ति भी कहा जा सकता है और विनम्र अहंकार की चमक भी। नागरिक अहंकार होता है। विनम्रता प्रकट होता है। आसानी से पहचाना नहीं जाता। द्वीप की भाषा विनम्र है। नदी के योगदान को स्वीकार करता है वह। इस स्वीकार में नदी के साथ बहने से इंकार शामिल है। उर्वर समतल भी बनना चहाता।

यह कविता 1949 में लिखी गई। यह विश्व-युद्ध और भारतीय आजादी के बाद का समय हैं। कोई अपने बुद्धि चमत्कार से भले 'प्लावन' का संबंध युद्ध और स्वाधीनता-संग्राम से तथा नदी का जनसाधारण से जोड़ दे पर वह खींच-तानकर बैठाया गया संबंध ही हो सकता है। सच तो यह है कि नदी, ओर द्वीप की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ इस कविता में दार्शनिक किस्म की हैं। किसी भी दौर के संदर्भ में उनकी व्याख्या नहीं जा सकती है। विचारणीय यह है कि जो हर दौर का हो, वह किस हद तक अपने दौर का हो सकता है। यह भी कि परिवर्तन से निरपेक्ष रहने वाले सत्य को शाश्वत नहीं तो और क्या कहते हैं।

जनजीवन का संबंध या तो नदी से होता है या खुद से। द्वीप अगर सुंदर हो तो कुछ पल उस पर मुग्ध हुआ जा सकता है, उसकी तारीफ की जा सकती है।

असाध्य वीणा–(अज्ञेय)

वाद्य वीणा का हर अंग-प्रत्यंग, हर अवयव तारों से बंधा है और बजाने पर ध्वनि पैदा करता है। इसका प्रारंभ होता है राजा के द्वारा प्रियंवद के स्वागत से। प्रियंवद केशों का कंबल धारण करता है। घर में रहता है। उसके आने से राजा की प्रतीक्षा पूरी होती है। जीवन की साध पूरी होने का भरोसा जागता है। गण बीन लाकर प्रियंवद के सामने रख देते हैं। वृक्ष से इसे बनाया था।

वह वृक्ष पुराना भी था। शिखरों और बादलों से ऊँचा था हाथियों की सूंडों जैसे डालें थीं उसकी। कोटर इतने बड़े कि भालुओं के घर हो सकें। ऐसे वृक्ष से वज्र ने इस को गढ़ा।

वह उसके जीवन का साकार सार है। राजा ने बताया कि उसके कलावंतों में कोई इसे साध न सका। राजा को भरोसा था कि बज्र का कठिन तप निष्फल नहीं जाने वाला। वह सधेगी पर किसी सच्चे स्वर के द्वारा ही। वह स्वर प्रियंवद का है, इसलिए वाद्य बीन, उसके सामने है। राजा, महारानी, प्रजा, सब उत्सुकता से भरे, हुए हैं। सब प्रतीक्षा-दृष्टि बन प्रियंवद पर केंद्रित हैं।

प्रियंवद अपना फटा कंबल खोल धरती पर बिछाता है और उस पर वीणा रखता है। उसे 'प्राण खींच' वीणा को बांधे तारों को 'अस्पर्श छुअन' से छुता है। पलकें मूँदना आत्मशक्ति को आत्मोन्मुख करने का प्रयत्न है और प्राण खींचना उसे केंद्रित करने का। 'अस्पर्श छुअन' से छूना यह संकोच कि यह कठिन कार्य करने को साधना-शक्ति पूरी पड़ेगी भी या नहीं, क्या पता। यह संकोच उसके कथन में भी है। ''...मैं तो/कलावन्त हूँ नहीं, साधक हूँ।''

प्रियंवद स्वयं को साधक के साथ ''जीवन के अनकहे सत्य का '' भी कहता। प्रियंवद, वज्र और वृक्ष के ध्यान-मात्र से गद्‌गद् विह्‌वल होता था। वह तारों पर माथा टिका देता था। इस तरह वह अपने को शोधता था। अपना स्व वृक्ष को समर्पित करता था।

इसी को 'कारुवाद्य' कहा गया। रचना करने वाला वाद्य। रचना करने वाली का अहंकार के रहते सधना असंभव है। प्रियंवद में 'कलावंतों' का अहंकार पहले से नहीं। निजता का जो संवेदानात्मक बोध है, उसे भी वह 'तरु' से एकालाप करते हुए उसे लोक में विसर्जित करता था। यह लोक जीवंत प्रकृति है। इस प्रकृति में वैविध्य है। पत्तों का झरना है उगना है। खिलना है। बारिशें हैं। भौरें हैं। 'वन-ध्वनियों के वृंदगान' का 'मूर्त रूप' है यह लोक।

इसे सुनना वृक्ष को सुनना था। इसका बोध होना का बोध होना है। इसे पाना वृक्ष को पाना है। पाने के लिए साहस चाहिए। विस्मृति का साहस। इसके लिए जितना साहस चाहिए, उतना है या नहीं, पता नहीं। संकोच प्रियंवद को पुनः रोकता है। ध्यान गोद में रखी तारों से बंधे वाद्य-यंत्र पर जाता है। लगता है वह 'पेड़' की गोद में ''बैठा मोद-भरा'' है।

बालक न कलावंत होता है, न शिष्य और न साधक। उसमें न अहंकार होता है। न निजता का बोध। न संकोच होता हैं, न भय। यहाँ तक कि वीणा को साधने का दायित्व भी उस पर नहीं रहता। 'तात' से गाने को कहता है वह। 'स्मरण' और 'श्रुति' की रोशनी 'अँधियारे अन्तस् में' जगा सकता है यह रोशनी हो तो उसका माध्यम बनने में समर्थ हो सकता है प्रियंवद।

वह असली प्राकृतिक वृक्ष की गतिविधियाँ याद करता है। इनमें झरती बूँदों की, टपकते हुए महुए की, परिंदे की, झरने की, ढोलक की, बाँसुरी की, क्रौंच की, टिटहरी की ध्वनियाँ हैं। छोटी-सी चिड़िया की 'फुरकन' है। पंख वाले बाण जैसी हंसों की पाँत है। मेघों की बाढ़ है। तूफान की फुफकार है। ओले हैं। पाला है। गिरती चट्टानें हैं। वन-पशुओं की पुकारें हैं–'गर्जन, घुर्घुर, चिचयाहट'। वाक्य में इनती ध्वनियाँ कहाँ मिलेंगी!

ध्वनियों को अलग दुनिया है में। 'वर्षा-बूँदों की पट-पट' से लेकर और भारी खुर की थाप तक। सुबह की सिहरन, दोपहर की तन्द्रा भी है यहाँ। अनूभूतियों की यह दुनिया इसकी है। प्रियंवद कहता है कि इस दुनिया में ''हर स्वर-कम्पन लेता है मुझ को मुझ से सोख/वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ।'' यह अतंःकरण का प्रकृति के में खो जाना है। गूँज उठना है। प्रियंवद की अकिंचनता को भी वृक्ष भूल जाए। शरण में ले ले उसे। फिर वही 'बीन के तारों मे' उतरे। वही हो। वही रहे। वही गूँजे।

इस स्थिति को उपलब्ध होकर प्रियवंद काँपती हैं। लय अवतरित होती है। कारुवाद्य की। इसलिए उन में ब्रह्मा का 'अशेष मौन विद्यमान है। मौन की विशेषता है कि वह हर तरह की ध्वनि को दे सकता है, देता है। ध्वनियों के लिए आकाश है वह। सब उसे अपने-अपने नजरिये से भर सकते हैं, मुखरित कर सकते हैं। सब की स्वतंत्रता इस मौन से संभव होती है।

लय को सब सुनते अपने-अपने अनुसार करते हैं। सृजन सब पर प्रभाव अलग-अलग डालता है। प्रभावित होकर सबके जीवन बदलते अपने-अपने ढंग से हैं। कैसे? आगे की कविता इसी का आख्यान राजा इस में मंगल-गीत सुनता। सुनकर उसका राजमुकुट हलका हो आता।

राजमुकुट राजा का मस्तक है। मस्तक अर्थात् सम्मान। मस्तक अर्थात् विचार। इस मस्तक पर ईर्ष्या, लिप्सा, ओर चापलूसी-प्रियता जैसे कलंक लगे थे, जो 'पुराने झर गए'। कलंक-कालिख हटाकर राजा ने यह समझ लिया। तय किया कि जो जिसकी चीज वह सब उस तक 'धर्म-भाव से' पहुँचा देगा। राजा अपना नहीं, प्रजा का होता है। यह बोध राजमुकुट को हलका करता है। राजमद से उसे मुक्त करता।

बीन को महारानी ने इस रूप में सुना कि उसके सारे आभूषण, उसकी सारी सज्जा अनिष्टकर है। इसके बल पर, ईर्ष्या पाई जा सकती है, वह प्यार नहीं पाया जा सकता। जो आश्वस्त होता और करता है, महारानी तय करती है कि अब खोखली चमक-दमक का प्रदर्शन नहीं।

सब लयात्मक का अर्थ अपने अनुसार करते हैं। कोई उसका अर्थ भगवान की कृपा करता है तो कोई डर से मुक्ति की उम्मीद। किसी को उसमें गुलाम जिंदगी की तड़प सुनाई देती है, किसी को आजादी की आवाज। किसी को बाजार की किसी को मंदिर की प्रार्थना किसी की हथौड़े की लोहे पर चोट, किसी को लहरों की नाव पर थपक। किसी को रास्ते पर जूते की चाप, किसी को बहते पानी की 'छुल-छुल'। किसी को 'युद्ध को ढोल'। किसी को प्रलय, किसी को सृजन। कान सबके अलग-अलग। सबके सब उस लय से इतने प्रभावित कि लगभग अभिभूत। लय सबकी अलग-अलग पहचान जगाकर उसे विलीन कर गयी। सबको प्रभावित किया। अप्रभावित कोई न रह सका। प्रभावित नहीं हुए।

असाध्य बीन इस तरह सधी। राजा प्रियंवद का अभिनंदन करने उसकी और बढ़े तो उसने कहा कि श्रेय उसका नहीं। लय का जब उद्भव हुआ, तब वह तो थी ही नहीं। अज्ञेय खुद को 'सब कुछ को सौंप' चुका था। बीन माध्यम थी। समय का अर्थ है—व्यक्ति-स्वातंत्र्य से संपन्न मनुष्य के अंतर्जगत् को परिमार्जित करता मौन।

'असाध्य वीणा' विपरीत परिस्थितियों में होने की कविता है। राजमुकुट प्रजा-हित-विरोधी, गीत विरोधी स्थितियाँ के कारण भारी है। राजा के कलावंत सुविधाभोगी हैं। अहंकार और चतुराई के मारे हैं। महारानी भी अहंकार और दिखावे की मारी है। ऐसे वातावरण में उनसे सृजन असंभव है। सृजन के लिए प्रकृति से परिचय चाहिए। किरीटी वृक्ष को देख सकने वाली भी चाहिए। उसे बीन गढ़ने वाला भी चाहिए। अडोल धैर्य भी चाहिए। कवि-कर्म का पूर्ण होना है। अनेक अंतः प्रकृतियों को बाह्य प्रकृति को ग्रहण करने के लिए तैयार होना है।

यह किसी समूह द्वारा नहीं होता। निर्धनता, विषमता, सांप्रदायिकता के ठोस यथार्थ में होने वाला बदलाव यह

नहीं है। अतः सामाजिक नहीं है। इस कविता में से जीवन ऐसे संसार के विरूद्ध है, जिसमें अहं, खुदगर्जी है। उन्हें जो समाज में नहीं मिला, वह उन्होंने प्रकृति में खोजा, कहना चाहिए, स्पप्न देखा।'' इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि संसार जिन बुराइयों से है, उनमें अधिकांश बुराइयाँ समाजिक नहीं, खुद की हैं। जोर अहं, खुदगर्जी आदि वैयक्तिक बुराइयों पर है। इनके दूर होने से सब अलग-अलग सुनते हैं।

हर कोई स्वप्न देखता और उसके अनुरूप कविता करता था। अज्ञेय की यह कविता इस प्रक्रिया की थी। जिसकी समाप्ति तरह-तरह के कविता-अकविता में हुई थी और जिस तरह मजाक बना डाला गया था, उस पर भरपूर व्यंग्यात्मक टिप्पणी भी है यह कविता।

अज्ञेय के कर्म की विशेषताएँ इस कविता में भी हैं। यहाँ भी व्यक्तिगत के उन्नयन से सतही सरोकार है। अनेक बिंब हैं, जो प्रतीक बनने की ओर उन्मुख हैं। मुक्तछंद का वह अबाध प्रवाह है, जो तत्कालीन हिंदी कविता-भाषा की उपलब्धि है। इसका वाचन लय के अनेक उतार-चढ़ावों को अपने में समाहित करता।

अज्ञेय ने इस कविता में भाषा का प्रयोग किया है पढ़ते हुए इसमें कोई संदेह नहीं रहता कि इसे किसी पढ़े-लिखे कवि अज्ञेय ने लिखा। ग्रामीण शब्द भी हैं। घटनाओं, स्थितियों, अनुभूतियों, दृश्यों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं का संयोजन परिपूर्ण है। आवश्यकतानुसार इस रचना में कथात्मकता भी है, नाटकीयता भी।

2. शमशेर की कविता

डॉ. विश्वंभर

शमशेर नई कविता के कवि हैं। इनकी काव्यरचना में प्रकृति के चित्र हैं, जो तथ्यपूर्ण कहे जा सकते हैं प्रकृति का प्रयोग इन्होंने अनेक बार छायावादी कवियों की पद्धति पर चित्रण का रूपक बना कर किया है। शमशेर की अनेक रचनाएं रूमानी शृंगारिक हैं जिनमें लोककाव्य की छाया यत्र-तत्र दिखाई देती है। शमशेर की यथार्थ भावनाओं वाली कविताओं से इन कविताओं का संबंध जोड़ना कठिन जान पड़ता है। शायद कवि ने भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन कविताओं में उर्दू की पुरानी कविता की सी रचनाएँ दिखाई देती हैं। कुल मिलाकर शमशेर की काव्य रचना वैविध्यपूर्ण है, यद्यपि उसके स्वर को पहचानना कठिन था। उनके प्रायः संपूर्ण साहित्य में अमूर्तन व्यक्त हुआ था। शमशेर ने परंपरा से चले जाने वाले बिंबों नई संवेदना विकसित की।

शमशेर के अमूर्त प्रयोग उनकी कविताओं और चित्रों दोनों में देखे जा सकते थे। कवि के पहले संग्रह 'कुछ कविताएँ' में इन प्रयोगों का सामंजस्य है। इन कविताओं और चित्रों की प्रेरणा कभी-कभी रागों से भी मिलती है।

शमशेर के संबंध में धारणा यह बन गई कि वे प्रभावकारी कवि थे और अपनी कविताओं में उन्होंने सिर्फ प्रकृति और मनोभावों के बदलते हुए प्रभावचित्र अंकित किए हैं, जोकि अपना लक्ष्य आप ही हैं। यह धारणा पूरी तरह से सही नहीं है और शमशेर प्रभाववादी कवियों से काफी भिन्न हैं। इसका कारण उनका राजनीतिक दृष्टिकोण है, जो उन्हें आत्मपरकता नहीं देता।

शमशेर की काव्यभाषा

शमशेर ने जब हिंदी में काव्य-रचना शुरू की तो छायावादी काव्य-भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। उनकी तत्कालीन काव्यभाषा में संयुक्त क्रियाओं का बहिष्कार, और अलग शब्दावली दीख पड़ती है।

शमशेर हिंदी के कवि हैं जिन्होंने स्पेसिंग अथवा अंतराल को काव्यभाषा का अंग बनाने की कोशिश की। शब्दों और पंक्तियों के बीच अंतराल का वह प्रयोग करते हैं। इन्हें समझे बिना उनकी कविता के समूचे मर्म को पकड़ पाना कठिन है।

शमशेर की काव्यभाषा प्रायः संज्ञाप्रधान होती है, यद्यपि उनका संघर्ष क्रिया-प्रधान भाषा अर्जित करने का रहा है। वस्तुतः उनका कवि इस संघर्ष को बाधित करता है। 'सींग और नाखून' में इसीलिए संज्ञापदों की बहुलता है। वस्तुतः जहाँ भी किसी वातावरण का वर्णन करने लगता है, संज्ञापदों की संख्या बढ़ जाती है।

शमशेर की उन कविताओं में क्रियापदों की प्रधानता हो जाती है। जो बातचीत का आत्मीय अंदाज़ लिए होती हैं, जैसे 'राग, 'रेडियो पर योरोपीय गीत सुनकर'। उन रचनाओं में भी जिनमें कि शमशेर प्रकृति की गतिमयता को चित्रित करते हैं, क्रियापदों की संख्या बढ़ जाती है। 'क्षीण बादलों में' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन आमतौर पर शमशेर के यहां क्रियापदों का अभाव ही है जो जीवन से उनकी तटस्थता को सूचित करता है।

शमशेर भाव के लिए क्रियापदों का प्रयोग करते हैं। 'तट' की इन पंक्तियों में उन्होंने यही किया है :

पंक्तियों में टूटती-गिरती, लौटती लहरें, बिजलियों-सी कौंधती लहरें।

ये क्रियापद किसी को काटते नहीं, बल्कि साथ मिलकर लहरों की बेचैनी को और व्यक्त करते हैं।

क्रियापदों के बीच में क्रियाविहीन पद के संयोजन से शमशेर प्रभाव पैदा करते हैं। उनका ऐसा प्रयास 'यूरोपीय गीत सुनकर' में लक्ष्य किया जा सकता है :

परदों में—जल के—शांत, झिलमिल-झिलमिल, दल।

प्रस्तुत पद की क्रियाविहीनता से 'रिलीफ' का काम लिया जा रहा है। यह क्रियाविहीनता 'कंट्रास्ट' के द्वारा संवेदन को व्यक्त करती है।

सर्वनाम के कई प्रकार के प्रयोग शमशेर के यहाँ मिलेंगे। सर्वनाम में परिवर्तन द्वारा वह निकटता और दूरी का बोध कराते हैं।

'आह', 'हाय-', 'अहा', 'तो', 'ही', 'भी', 'और' आदि शमशेर के वाक्यों में अर्थ-छायाएँ अर्जित करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

शमशेर की काव्य-भाषा कहीं-कहीं पर अमर्तन को छूने लगती है। ऐसे स्थलों पर शब्द संसंबद्ध नहीं जान पड़ते और अर्थ का निश्चित करना असंभव हो जाता है। शब्दों में लय की-सी स्वयं पर्याप्तता का गुण है। शमशेर की 'वह' इसका उदाहरण है :

> वह, उठता जो, उठा, और - और - और, पाने मुझे, अपने अंक में ही लेने मुझे। कहाँ टकराता अपनी मौन लहरें—में हूँ यहां-निश्चलतम।

यहाँ शब्द केवल भाव-संकेत या 'टोन' में बदल गये हैं। लय में भी भाव-संकेत या 'टोन' ही प्रमुख होता है।

शमशेर की कविता में शब्दों के वज़न और स्वभाव का पूरा-पूरा ध्यान रहता है। शब्द-मितव्ययिता का आदर्श उनके यहाँ है। उनकी कोशिश कम-से-कम शब्दों में अपनी बात कह देने की रहती है। फालतू शब्द उनके यहाँ नहीं के बराबर मिलेंगे। शमशेर के यहाँ अनावश्यक शब्दों की संख्या नगण्य-सी है। संक्षेपीकरण की प्रक्रिया में शमशेर शब्दलोप से सहायता लेते हैं। शाम में भी शब्दलोप की यह प्रवृत्ति सक्रिय है। शब्दलोप की प्रवृत्ति से शमशेर को एक खमियाज़ा उठाना पड़ता है। जिस अनुपात में शब्दलोप का दबाव उनकी भाषा पर पड़ता है, उसी अनुपात में उनके यहाँ बोलचाल का मुहावरा होता है।

शमशेर की काव्य-भाषा में पूर्ववर्ती कवियों की शाब्दिक अनुगूंज दीख पड़ती है।

शमशेर की भाषा में आवर्त बहुत है। शब्दों के दोहराव से वह गूंज, का आभास कराते हैं जो अर्थ को ढंग से अर्जित करने में सहायता देता है। आवर्त के प्रयोग लक्ष्य किये जा सकते हैं।

शमशेर ने दो प्रकार से मुक्तछंद लिखा है—छंदोबद्ध पंक्ति को तोड़कर और बोलचाल की लय को आधार बनाकर। पहले प्रकार का प्रयास 'बात बोलेगी' जैसी कविताओं में किया गया है। देखिए :

> बात बोलेगी, हम नहीं, भेद खोलगी, बात ही,

शमशेर ने पाठ में छंद की पंक्तियों को तोड़कर मुक्तदंद बनाने की कोशिश की है। शमशेरी के मुक्तछंद का रूप और आस्वाद बातचीत के लयाश्रित मुक्तछंद में ही मिलता है। इसमें वह कई बातों का ध्यान रखते हैं—स्वाभाविक बातचीत के विरामों के अनुकूल मुक्तपदों; स्वरों और व्यंजनों का अनुभूतिजन्य भावों के अनुरूप संयोजन और छंदों में बोलचाल के मुहावरे।

शमशेर की भाषिक क्षमता उनके वक्र वाक्य विन्यास में लक्षित होती है। ऐसे वाक्य विन्यास मे वह परिचित अथवा सामान्य पद-क्रम को बदलते हैं।

हिंदी काव्यभाषा को समझने के लिए शमशेर और अज्ञेय को दो भाषिक छोरों पर रखकर देखना होगा। शमशेर के यहाँ वाक्य ही भाषा की इकाई है और उसमें वह बोलचाल के मुहावरे और लय का प्रयोग करते हैं। अज्ञेय के यहाँ शब्द भाषा की इकाई के रूप में सामने आता है। उनके यहां शब्दों की बहुलता है। नतीजा यह होता है कि अज्ञेय के यहाँ बोलचाल का मुहावरा और उसकी लय छूट जाती है। शब्दावली में कृत्रिमता और किताबीपन आ जाता है और 'स्पीच रिद्म' के स्थान पर 'वर्स रिद्म' प्रमुख हो जाता है। उनकी भाषा चित्रात्मक है। उनकी भाषा के अनेक स्तर होते हुए भी उनमें चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता का समान गुण है जो उनकी रचना प्रक्रिया को विशेषता प्रदान करता है।

गद्य-कविताओं में भी शमशेर ने विषय और मनोदशा के अनुसार ही लय का निर्धारण किया है। कवि की मनोदशा ही उसकी विषय है, इसलिए कविता की लय उसी के अनुसार चलती है।

शमशेर की काव्य-भाषा खास तरह की काव्य-भाषा थी। उसमें कभी-कभी छायावाद, जनवाद और उर्दू की काव्य-परंपराओं को मिलाकर मायूसी का ऐसा लहजा तैयार किया है, जो केवल उनका है।

शमशेर ने छंद बंध को तोड़ा और उसके स्थान पर छंद के नये रूपों का सृजन किया था। छंद को तोड़कर कवि लय और ध्वनि को संदर्भ देता है अथवा उन्हें मुक्त छंद में लयबद्ध करता है।

शमशेर गद्य में कविता लिखते हैं और उसे लय से संयुक्त कर देते। उनकी वाक्य-रचना गद्य की तरह होती है। गद्य भी लय में रूपांतरित होता है और इस दृष्टि से, उनकी कविता को हम मात्र गद्य भी नहीं कह सकते।

पाठ्यक्रम की कविताएँ

शाम (यह कविता अब आपके पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं है।)

शमशेर की यह कविता छिपते शाम के चित्र से आरंभ होती है। इसमें शाम का उत्सर्ग है। इसलिए प्रकृति के दृश्य हैं।

पतझर के पत्त नीरस होकर गिरने लगते हैं। यहाँ पतझर में भी पत्ता झर या गिर नहीं रहा, 'ज़रा अटका हुआ' है। झरते पत्ते के इस तरह अटकने का बिंब अज्ञेय ने भी देखा था –

जीवन मर्म झरना : झरता पत्ता डाल से अटक गया। (अज्ञेय)

'शाम' में प्रभाववादी अभिव्यंजनावादी अंकन के माध्यम से नारी की व्यंजना दी गई है। शाम को 'जरा' अटका हुआ पत्ता बताया गया है। पत्ते की स्थिति को चित्रित करने में अव्यय 'जरा' कितना बड़ा रहा है। शाख़ से अभी टूटने को ही हो जैसे यह पत्ता।

शाम के बिंब को कवि ने पतझर के पत्ते में रूपांतरित किया है। अगली पंक्तियों में वह पत्ते का रूपांतरण नारी के 'मुख' में कर रहा है :

शांत मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुख म्लान-सा (कि मैं हूं वह, मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)

इस 'मुख' में सुबह की ताज़गी नहीं, शाम की थकान है। शाम और पत्ते में निहित भाव-संसार में स्थानांतरित होता हुआ जान पड़ रहा है। पतझर का पत्ता आदमी को अपनी भावनाओं में नारी का सुंदर मुख प्रतीत हो रहा है, ऐसा मुख जो दृश्य-जगत से ओझल हो जाने के बिलकुल करीब है प्रश्नवाचक वाक्य में नारी का इस आदमी के प्रति का आभास मिलता है। गोया वह भी उसके प्रति चिंतित है।

शब्दलोप के कारण शमशेर की कविताएं जगह-जगह अस्पष्ट हो जाती हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में भी ऐसी अस्पष्टता दीख पड़ती है। 'रूप कोमलता' से तात्पर्य है कि प्रेम का ऐसा कोमल रूप तो आंखों में उसने कभी न देखा था।

शमशेर की पंक्तियों में मुख 'आंसू' के बिंब में बदल रहा है। 'सांझ' यहां बीते दिन दिन, खोये गये उजाले को संकेतित करने के साथ वर्तमान में घिरते अंधेरे को भी बिंबित कर रही है। वर्तमान से पलायन संभव हैं। 'पत्थर' की स्थिरता अप्रिय वर्तमान के ठहराव को व्यंजित करती है। अगली पंक्तियाँ इस भाव को और आगे ले जाती हैं :

लंबी आह, मौन लंबी आह।

यह आंसू सांध्य -सा है। जिसे अंतरिक्ष की अतल गहराइयों में गिर जाना है।

सांध्य 'आंसू' में अवसाद, 'अतल' भय व्यंजित होता है। वस्तुतः ये सब मिलकर यहां अवसाद को ही मर्मबिंबित कर रहे हैं।

'शाम' में शिल्प की सपाटबयानी है। निश्चय ही इस उपलब्धि के पीछे पतझर के पत्ते का रूपक है जो क्रमशः नारी के मुखकमल, आदमी के मुख, और आंसू में बदलकर शमशेर अवसाद को व्यक्त पुष्ट करता है। इस कविता में कम तीन क्रियाएँ हैं। क्रियाओं का इतना कम होना शिथिलता के भाव को व्यंजित कर रहा है। पंक्तियों के बीच में अंतराल यहां कविता का महत्त्वपूर्ण रहा है। वृद्ध पतझर की सांझ ने शमशेर की भावनाओं को उभार दिया हो। यह भी संभव है कि पतझरी का 'म्लान हारा-सा' विरहिणी के 'मुख' की तरह भासने लगा हो।

शाम के अस्थायित्व निराशा और थिकान के भाव अपेक्षाकृत रूढ़ हैं, क्योंकि बहुत कुछ निर्धारित है। शमशेर के लिए यह अनुभूति कई भिन्न बिंबों के माध्यम से हुई है :

शाम, पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आंसू, सांध्य का अतल में।

''शाम'' के साथ 'पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता' और अटका हुआ आंसू, सांध्य का संबंध है। शाम के प्रसंग में वे स्वतंत्र स्थितियां भी हैं—पेड़ में पत्ते का अटका रहना और आसमान मे उगना—और 'शाम' के भाव को अपेक्षाकृत अमूर्त बिंबों के द्वारा प्रकट भी करती थी। ध्वनियों का प्रयोग शमशेर ने अमूर्तन के प्रभाव को और गहरा करने के लिए भी किया। 'घनीभूत पीड़ा' शीर्षक कविता तो सिंफनी के सादृश्य पर प्रायः समग्रतः अमूर्त चित्रों के माध्यम से रची गई।

अश्रु का यह बिंब उपमानों से अवच्छिन्न नहीं है। पत्ते जीवन के प्रतीक थे। भंगुरता का प्रतीक हो सकते हैं। इसी प्रतीकात्मकता के कारण शमशेर ने उसे लिया है। वस्तुतः यह पतनोन्मुख अश्रु-तार किसी भी मरणोद्यत का प्रतीक हो सकता है। सालों पहले मरी हुई पत्नी का स्मरण मरणासन्न व्यक्ति के रूप में संभव नहीं है। मरणोद्यत स्वयं शमशेर बहादुर होगा और उसकी मृत्यु-कामना का यह बिंब उसके व्यक्तित्व का संकेत है।

शमशेर की कविता में मृत्यु-कामना की पुष्टि क्रियाओं के विश्लेषण से भी होती है। पूरी कविता में दो क्रियाओं का प्रयोग है। 'हूं' में अस्तित्व की बोधक नहीं है। वाक्य की संदेहमूलकता और 'मैं' की छायामयी स्थिति ने उसे संवृत कर रखा है। उसकी उपेक्षा पंक्ति से हो गई है। इनके अतिरिक्त 'अटका हुआ' और 'गिरा' पद विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। 'अटका हुआ' की स्थिति का 'अग गिरा' में पर्यवसान भी मृत्यु-कामना का व्यंजक है।

निष्कर्ष यह कि प्रत्यक्षतः कविता में सांझा का प्राकृतिक बिंब अंकित है। पत्ता, मुख-कमल, आंसू और की उपमाएँ शमशेर की पत्नी की जीवनोत्सर्ग की कामना से प्रेरित लगती थीं।

(शृंग) सींग और नाखून—डॉ. विश्वंभर तिवारी

'कुछ और कविताएं' में शमशेर की यह कविता संकलित है। रामविलास शर्मा के अनुसार—

इस में योद्धा के बिंबों का प्रयोग है। 'सींग और नाखून' आदिम के संघर्ष की कथा कहते हैं। 'लोहे के बख्तर' में कोई संघर्षशील 'सिपाही' थककर बैठा होगा। निरंतर संघर्षरत 1942 ई. में इतना लहूलुहान और क्षत-विक्षत हो गया है कि उसका अंत दूर नहीं लगता। संघर्ष के कारण ही सिपाही का घाव 'तसलों में' सड़ा है।

विरोधियों के वार अनपढ़ गरीब ने सदा छाती पर झेले हैं। प्रमाण है—'सीने में सूराख हड्डी का' वह किसी संग्राम की तरह इन घावों की परवाह किये बिना मैदान में डटा रहा—कमर कसकर। हिम्मत के जवाब दे जाने पर ही सिपाही की कमर में घाव हुआ, जो अब 'सड़ चुका है।'

जिस योद्धा की कमर टूट गई, उसके अस्त्र-शस्त्र क्या काम आएंगे? शारंग, बख्तर पेशे बेकार हैं। इसलिए इसने हथियार को थाम रखा है। अब उससे वीरासन नहीं सधेगा। उसका सिपाही अब बेजान होकर पांव पर आ टिका है। उसकी जड़ें पथरा गई हैं, यानी सिपाही का मूलोच्छेद सन्निकट है। आसन्न मृत्यु की व्यथा और दीर्घकालीन संघर्ष की असफलता से बूढें सिपाही की 'आंखों में : काई की नमी' है। आँखें भी इस तरह नम हो गई थीं। इस नमी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि जड़ें पथरा ज़रूर गयी हैं।

अनपढ़ गरीब संघर्षशील का यह बिंब मानस की गहराई के अवसाद का व्यंजक है। 1942 ई. में शमशेर का झुकाव वाद की ओर हो चुका था जो विश्व-युद्ध में हार रहे थे। उनकी हार में शमशेर की हार दिखती थी। पराजय की इस मनःस्थिति के कारण ही उसने जबलपुर के किसी को मरणासन्न के रूप में देखा होगा। शमशेर बस की भीड़ में खो गया। उसकी जिजीविषा इस पराजय को स्वीकार नहीं कर पाई।

मनःस्थिति के परिवर्तन से पत्थर 'हो चुकी' शिला का खून पीने लगी। निराशा के क्षणों में जीवन पथरा जाता है; जीव ही अश्म (फ़सिल) बन जाता है। 'मनोविश्लेषण के अनुसार इस निराशापूर्ण मनःस्थिति में जीवन शिलीभूत हो जाता है। मनस्तापी जकड़ाव की ऐसी स्थिति में पत्थरों के बीच पत्थर हो जाने का चित्र देखता है। अचेतन की जकड़बंदी

कम होने पर पत्थर टूटने लगते हैं। इसलिए पथराई ही 'शिला' को पीने लगी है। वहां गरीब अनपढ़ जनता की क्लांति और थकान, उब है।

'सींग और नाखून' का अंतिम शब्द 'पत्थर' था। जकड़ाव ख़त्म हो जाने से इस कविता में उस 'शिला का खून' हो गया लगता है। शायद उसकी 'छांह' में जीवन जम गया था। जमे हुए 'हिमगिरि की वह उठान' ही विश्व की 'तुंग तरंग' बन गई। 'सींग और नाखून' कविता नितांत अतियथार्थवादी कविताएँ हैं क्योंकि इसमें यथार्थ की पकड़ है, वह मात्र वायवी एवं अतार्किक योजना है। सींग, नाखून और लोहे के बख्तर के बिंबों के द्वारा महायुद्ध के बाद आदमी की कठोरता एवं पशुता का चित्र उभर कर सामने आता है। संवेदनशून्य हिंसक पशु-सा हो गया है।

लड़ाई की संवेदनशून्यता एवं जड़ता के कारण शमशेर की सृजनता भी लोप हो गई है और इस अवस्था को 'मुर्दा ' जैसे बिंब अतार्किक हैं। यह पूरी कविता मात्र अतियथार्थवादी को प्रकट करती है, जड़ता को, तथाकथित असंबद्ध बिंबों के द्वारा प्रकट एवं व्यंजित करती है। इसे अतियथार्थवादी कविता कहा गया है जिसमें असंबद्ध एवं अतार्किक बिंबों के द्वारा यथार्थ की विद्रूपता और विकृति को व्यक्त किया गया है। शमशेर की कविता में ये दोनों तत्त्व प्राप्त होते हैं—उनकी कविताएँ असंबद्ध बिंबों की रचनाएँ हैं। जिसमें अतियथार्थवादी चेतना मिलती है।

3. रघुवीर सहाय की कविता

रघुवीर सहाय नई कविता के कवि माने जाते थे। इनकी अधिकांश कविताएँ विचारात्मक, गद्यात्मक हैं। रघुवीर सहाय अपनी आरंभिक कविताओं में प्रवृत्ति और जीवन के अनेक सहज चित्र प्रस्तुत करते थे। परंतु धीरे-धीरे यथार्थ की जटिलता सहाय के स्वभाव को प्रभावित करती है। सहज जीवनासक्त अभिव्यक्तियों की जगह व्यवस्था के प्रति व्यंग्य और यथार्थ का गंभीर विश्लेषण उनकी कविताओं में मूर्त और मुख्य हो उठता है।

स्वातंत्र्योत्तर उत्तर औपनिवेशिक समाज में विश्रंखलित मूल्यों से जुड़े प्रश्नों पर विचार उनके 'आत्महत्या के विरुद्ध' काव्य संग्रह की आधार-भूमि है। इस संग्रह की लगभग सभी कविताएँ यथार्थ से जुड़ी हुई हैं। सन् 1967 में प्रकाशित इस संग्रह की कविताएं तत्कालीन मोहभंग, व्यर्थताबोध और मामूली अनुभवों की सामान्यता को गद्य जैसे विन्यास में व्यक्त करने वाली कविताएं हैं। मूल्यांकन के विभिन्न उपलब्ध मानदंडों से अलग जाकर इन कविताओं की आलोचना करने का अर्थ इन्हें तर्कशील से परखना समझना है। यथार्थ को जानने के लिए आमंत्रित करती कविताओं का अर्थ-कविता के पाठ के तटस्थ साक्षात्कार पर ही निर्भर है।

रघुवीर सहाय की काव्यचेतना और काव्यशिल्प की मुख्य कोशिश यही रही है कि वे सब से अलग अपनी पहचान बना सकें, अपना काव्य मुहावरा खोज सकें। यथज्ञर्थ भी उनके लिए खोज का विषय है...भाषा भी। पहले से बनी बनाई साहित्यिक भाषा जैसे कवि की कोई मदद नहीं कर रही है और नई भाषा पाने के लिए... वह अपने समाज में बोलचाल के साधारण शब्दों में सर्जनात्मक अभिव्यंजना लाने के लिए लगातार संघर्ष करने के लिए बाध्य हैं।

रघुवीर सहाय राजनीति को अनिवार्य मानते हैं। वही स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद (1967) सत्ता का राजनीति, उनके अन्तर्विरोध, नेताओं के छत-छदम, अवसरवादिता तथा ढोग पाखण्ड को स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत कर देते हैं। रघुवीर सहाय राजनेताओं/सरकार के चरित्र को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–

सरकार आश्वासन देने के लिए राजाज्ञा का आश्रय लेती है।

रघुवीर सहाय इन्हीं राजनीतिक विद्रूपताओं, पाखंडों और झूठ को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं, क्योंकि भारतीय समाज तथा राष्ट्र की अवनति तथा दल की दुर्गति के लिए कहीं न कहीं राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार जिम्मेदार है। आजाद भारत की इस भ्रष्ट राजनीति ने 'जनतंत्र' में से व्यक्ति को अश्रव्य अमूर्त और अदृश्य अवधारणा के रूप में बदल दिया है।

नेता क्षमा करें

सार और मूल्यांकन

यह कविता 'रघुवीर सहाय के काव्यसंग्रह की कविता है। इस काव्य संकलन के 'वक्तव्य' में रघुवीर सहाय की आरंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत कविता का भावार्थ समझने मे सहायक सिद्ध होती हैं। वे कहते हैं कि–''अक्सर मुझे यह अहसास, तीखा अहसास-साहित्य के बारे में दुबारा सोचने को मजबूर करता है कि क्या आज हम, उस दुनिया से बेगाने होते नहीं जा रहे हैं, जिसमें रहकर हम दुनियावालों की दुनिया में एक हिस्सा लेते और फिर उससे अलग हो जाते हैं। वह हमारी दुनिया या तो नकली उदासीनता से या सतही दिलचस्पी से कमोबेश छिन्न-भिन्न हो चली है। अगर कोई-चीज़ उसे सम्हाले हुए है तो वह यह जिद है कि साहित्य की आज भी अपनी अलग दुनिया है और साहित्यकार की अपनी अलग जिंदगी।

पहले हम उस बाहरी दुनिया को देखें जिसमें हमें पहले से ज्यादा रहना पड़ रहा है, लेकिन जिससे हम न लगाव साध पा रहे हैं, न अलगाव। ''मैं बदमाशों, गधों और मक्कारों के लिए जिम्मेदारी महसूस नहीं करता हूँ, पर जो कुछ मैं रचता हूँ, सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर रचता हूँ–या फिर नहीं रचता। फ़िलहाल अपने को रचने योग्य बनाए रखने में लगा रहता हूँ।'' (रघुवीर सहाय 'वक्तव्य')

रघुवीर सहाय ने अपने काव्यसंकलन के इस आरंभिक वक्तव्य में साहित्यकार की स्थिति को स्पष्ट करते हुए आरंभ में ही सभी प्रबुद्ध, शिक्षित वर्गों और रचनाकारों की ओर से नेताओं से क्षमा मांग ली है। उनका अभिप्राय यही है कि शिक्षित जनों की अलग ज़िंदगी है अतः नेता लोग हमें क्षमा करें। सरकार के या विरोधी पक्ष के नेताओं के हितों के लिए लड़ना या उनकी तरफ से कर्त्तव्य परे करना हमारा कार्य नहीं है। साहित्यकार और लिखने पढ़ने में लगे रचनाकार या प्रबुद्ध जन बाह्य यथार्थ की विसंगतियों के प्रति जागरुक होकर प्रतिक्रिया तो देते हैं—लेकिन वे 'भीड़ के कायल' नहीं। वे अपनी लिखाई पढ़ाई या साहित्य सृजन के लिए जीते हैं।

वे पूछते हैं कि साहित्य भाषा-शिल्प या लिखने पढ़ने से अलग—''मुझे दूसरों को तोड़ने की फुरसत है?''

रघुवीर सहाय अपने आसपास के समाज और लोगों के अनुभवों को रूप में अभिव्यक्त करना नहीं चाहते हैं। वर्तमान यथार्थ की जटिलता के विषय में नेता और जनता के बीच अपना रिश्ता स्पष्ट करते हुए वे स्वीकार करते हैं कि 'वे नहीं हैं।' उससे किसी गरीब जनता की भूख नही मिल सकती है न ही अभावग्रस्तता का गमगीन माहौल बदल सकता है। वे आकाशीय मायावी या रूहों के किसी चमत्कार से भी इंकार करते हैं। वे लोगों के इस भ्रम को दूर करने में अपनी विवशता व्यक्त करते थे।

इस स्थिति को स्पष्ट करना किसी अनपढ़, गरीब के स्वप्न, निर्मित हुए भ्रम और इच्छाओं-आकांक्षाओं का टूटना है, अर्थात् वास्तविकता का सामने आना है। भ्रम के टूटने का स्वप्न भंग के कारणों, उसके परिणामों के बीच स्वप्न की तलाश की प्रक्रिया भी कवि को निरर्थक लगती थी।

लोकतांत्रिक संस्थानों का विपरीत आचरण और सामाजिक विषमताएँ संवेदनशील व्यक्ति के मन में अस्वीकार और अविश्वास पैदा करती है। छद्म का उद्घाटन रघुवीर सहाय समकालीन कवियों से अलग करता है। जहां साधारण लोग इस छद्म को समझ नहीं पाते और भ्रम में रहते हैं, वहाँ वह अस्वीकार करता है।

जब रघुवीर सहाय कहते हैं कि वे जनता से प्यार करते हैं तो उसके जनता से आत्मीयता दिखाने वाले कथनों को नेताओं ने इतना भ्रष्ट कर दिया कि उसमें पेशेवर झूठी आत्मीयता झलकती थी।

समाज में प्रचलित पाखंड अनपढ़ नेताओं के नेतृत्व ने संचार और प्रचार के माध्यमों के द्वारा भाषा की रचनात्मकता को बने बनाए दिखावटी जुमलों और मुहावरों के सांचों में ढालकर उसका व्यवसायीकरण कर दिया था। इनकी भाषा में व्यक्तिगत उत्कृष्टता खो चुकी। ईमानदारी के साथ कहना चाहता है लेकिन लोग उसका कुछ और ही अर्थ निकाल लेते हैं।

संवेदनशील रघुवीर सहाय और कुछ लोगों के बीच असामंजस्य ऐसा है कि लोग कुछ और ही 'बोल उठते हैं''। आगे इस कविता में 'मूर्ति तोड़ने' का प्रसंग है। पहले तो नेताओं ने मूर्ति तोड़ने का आदेश दिया। इसके बाद उसकी जगह 'मूर्ति' स्थापित करने को दे दी। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने नकली, ढोंगी जैसों का पाखंड और मूर्खता का नकली या छद्म विरोध किया। उनका विरोध निरर्थक रहा।

मूर्तिभंजन और स्थापन की प्रक्रियाओं से ऊब कर रघुवीर सहाय कहते हैं कि देश के लोगों और नेताओं से मैं कहना चाहता हूं कि मैं हूँ। रघुवीर सहाय जनता के साथ अलग संवादयुक्त भाषा की खोज करना चाहते हैं।

आगे की काव्य पंक्तियों—'अपनी मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ—और आप कहते हैं कि कविता की है। इनके मंतव्य को समझने में रघुवीर सहाय के काव्य संकलन 'आत्महत्या के विरुद्ध' के आरंभ में उनके वक्तव्य की कुछ पंक्तियाँ सहायक हैं—

नेता और अनपढ़ मीडिया के प्रति मेरा यही रवैया है— संकटकालीन रवैया कह लीजिए, कि— 'वह फिजूल है' —ऐसे —फ़तवे संकट से भागने के बहाने हैं—**वह ज़रूरी है पर 'मैं भी अपने लिए बहुत ज़रूरी हूँ'—अपनी उस कला के लिए**—जिसमें मैं अपनी मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ और आप कहते हैं कि कविता की है।''

समाज को बदलने के लिए वे यह मानते हैं कि उनका मुख्य कार्य अभिव्यक्ति तक सीमित है।

वैचारिकता, सांकेतिकता, भाषा की सादगी और गद्यात्मकता इस कविता की विशेषता है। इसमें उन्होंने लोकतंत्र के कथित पेरोकार नेताओं पर व्यंग्य किया है।

अपने आप और बेकार

रघुवीर सहाय की 'आप बेकार' कविता भी 'आत्महत्या' के विरुद्ध' काव्यसंग्रह में संकलित है। इस कविता में उन्होंने व्यवस्था के खोखलेपन का उपहास करते हुए रघुवीर जी साधारण जीवन को पूरी तरह व्यर्थ बताते हैं।

मौजूदा समय व समाज से लोगों के तीव्र मोहभंग को महसूस करते हुए रघुवीर सहाय कहते हैं—'यही लोग हैं।' जो देश की निरंतर विभाजित आर्थिक, सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों के बीच रहते हैं। उनके चारों ओर लोग ही लोग हैं, लेकिन बिगड़ती हुई स्थितियों के बीच के किसी भी विचारधारा से अपना कोई संबंध स्थापित नहीं कर पाते। लोग चाहे खुश हैं, या असहाय हैं, लेकिन जिंदा रहने का प्रयत्न कर रहे हैं। अब 'बेकार' उतना व्यर्थताबोधक शब्द नहीं रहा, अंतिम शब्द 'बेकार यहां इसलिए अलग प्रकार है, क्योंकि इसके पहले की पंक्ति में चारों तरफ के लोगों के परे दुःख को अनुभव और उसे सहने की बात कही गई थी।

कवि सभी पार्टियों या दलों को कहीं नहीं रखते हैं। कि देश की पारदर्शी व्यवस्था चारों ओर तंगहाल दिखती है, उसके सामने वे किसी कोने में दुबक सकते हैं। वे साहित्य को किसी भी तरह सामाजिक परिवर्तन में सहायक नहीं मानते।

भाषिक संरचना की दृष्टि में बिलकुल सीधे-सपाट शब्दों को गद्य-सरीखे वाक्यांशों में बांधा गया है। सूचनात्मक अखबारी भाषा का प्रयोग हुआ है। आरंभ की पंक्तियों में शब्दों का दुहराव और 'आप बेकार' का दुहराव आप, ही हर अनुभव की व्यर्थता का बोध कराता है। महानगर, जहां यांत्रिक सभ्यता के अधीन लोग खुद में बंद रहने के लिए मजबूर हैं, वहां तमाम लोगों के बीच भी ऐसा लगता है जैसे व्यक्ति किसी अजनबी जगह में हो—यही इस कविता की संवेदना है।

लोकतंत्रीय मृत्यु

(रघुवीर सहाय) 'ईश्वर' या किसी और के किसी चमत्कार से भी इंकार करते हैं। वे लोगों के इस भ्रम को दूर करने में अपनी विवशता व्यक्त करते हैं—कि ईश्वर है और जो तमाम बेतरतीब चीजों को बदल नहीं सकता है।

नई हँसी

रघुवीर सहाय के 'आत्महत्या के विरुद्ध' काव्यसंग्रह की यह कविता है। इस कविता में लोक संस्थानों और मंजरी उनके प्रचार के और उसे भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधियों के स्तरहीन चरित्र और उनके खोखलेपन पर कटाक्ष किया गया है। इस निरंकुश वर्ग की नई हंसी बहुत कुटिल और अमानवीय थी। इस हंसी या अट्टास को कवि रघुवीर जानते थे। इसलिए व्यंग्यात्मक लहजे में कहते—

नेताओं के पास मीडिया, मीडिया के सभी अलग-अलग अंग मीडिया से बंधे हैं।

यहां जनता, उसके अधिकारों और प्रश्नों को कोई समझने वाला या देखने सुनने वाला नहीं हैं। समाज के प्रति सहानुभूति रखने वाला कोई भी वाद-खो चुका है। रघुवीर सहाय के अनुसार लोकतंत्र, आदि अपनी उपयोगिता और प्रासंगिकता पाते जा रहे हैं। 'महासंघपति' जैसे नेता और जागरुक दिखने वाले बेशर्म हंसी हंसते थे। इस 'नई हंसी' को कवि त्रासदी और विडंबना मानता था।

कवि के अनुसार इससे पहले के जमाने में इतना खोखलापन और दिखावा नहीं था। लोग आपस में मिलकर निष्कपट हंसी-हंस लेते थे। लेकिन अब उन्हें चारों ओर अजब बेबसी और मजबूरी का वातावरण दिखता है। लोग 'दाएं-बाएं' झांकते थे। कवि के अनुसार नेताओं के वक्तव्य भी कूटनीतिक चाले हैं—जो कोई सही गलत नहीं देते। निरर्थक नामों, उपनामों के सहारे झूठी हमदर्दी बटोरकर जनता को गुमराह किया जाता था और बनावटी हंसी में सब नहीं पाया जाता है। रघुवीर सहाय इस हंसी के कारण को समझते हैं ओर सावधान करते हैं। नेता भी खुद से ही जुड़े हैं।

यहाँ कवि ने नेताओं और जनप्रतिनिधियों पर बोलचाल की भाषा में व्यंग्य किया है। 'हंसी' आदि शब्दों की बार-बार आवृत्ति बनावटी हंसी की असलियत को स्पष्ट करती है। भाषा की सादगी और लगभग सपाट गद्यात्मक विधा द्रष्टव्य हैं।

यह कविता जिस-यथार्थ को हम देखते-सुनते हैं उस अनपढ़ गंवार के कारणों को जानने व पहचानने के विषय में स्वीकृति; परिणाम था भ्रष्ट, अमानवीय नास्तिक समस्राओं की समाप्ति होना।

बचाने का प्रयास है। 'हंसी' सत्ता पक्ष की संवेदनहीनता और क्रूर छद्म सहानुभूति को प्रस्तुत करती थी। सत्ता की हंसी—यहां हास्य की सृष्टि नहीं करती, अपितु समाप्ति की प्रतीक बन कर आती है।

स्वाधीन भारत निर्धनता, शोषण, बेकारी और असुरक्षा में घिरा हुआ है। देश के 'आदमी' को दिन-रात में सभी समस्याएँ सालती रहती हैं, इन सब से घिरा हुआ संगीन आदमी तिल-तिल कर मरता है और इन कड़वी सच्चाइयों और समस्याओं को समझने-सुलझाने की बजाय सत्ता से आदमी को क्या मिलता है? —हंसी, उपहास। सत्ता पक्ष वास्तविक समस्याओं की ही हंसी नहीं उड़ाता अपितु उन्हें हंसी में उड़ाकर निरर्थक, अदृश्य और अमूर्त बना देता था। कविता इस प्रकार प्रारंभ होती है।

निर्धन जनता का शोषण है/कहकर आप हंसे/
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है/कहकर आप हंसे/हैं
कहकर आप हंसे/बड़ी लाचारी कहकर आप हंसे।''

यह पंक्ति 'आप' और 'मैं' के बीच चलती है। आप प्रतीक है, क्रूर केंद्र की सत्ता व्यवस्था का, राजनेता का। रघुवीर सहाय की अनेक कविताएँ नेताओं से निरंतर परिचय कराती थीं। अनेक मुखौटों को लगाए यह राजनेता आदमी के जीवन को बद से बदतर बनाए जा रहा था। उसके लिए 'लोकतंत्र की मृत्यु' हास्यास्पद वाक्य मात्र है। लोकतंत्र और लोकतांत्रिक मूल्यों की हत्या करने के बाद हंसी अत्यंत भयावह है। यह उपहास कर समाज कर स्वयं अपनी करतूतों पर पर्दा डालता। राजनेता रिश्वतखोरी और अवसरवादिता को निरंतर प्रश्रय देते और इन समस्याओं के हल न होने पर झूठी लाचारी व्यक्त करने के बाद हंस कर वह इन समस्याओं को अगंभीर बना देता था। इस विरोधी व्यवस्था में स्व्यं रघुवीर सहाय को सत्ता के समक्ष अकेला पाना सहाय को कैसा लगता होगा?

''कितने आप सुरक्षित होंगे/मैं सोचने लगा/सहसा मुझे
अकेला पाकर/फिर से आप हंसे।''

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय, हिंदी कविता के उन हस्ताक्षरों में से थे; जिन्होंने साहित्य और समाज को एक-दूसरे के समक्ष रखकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में आदमी की विडंबनात्मक स्थिति, उसकी समस्याओं और इस विरोधी व्यवस्था में राजनीति तथा जीवन के परस्पर संबंध को बचाए रखने का प्रयास किया। रघुवीर सहाय की चिंता कला नहीं, अपितु मनुष्य और मनुष्य निर्मित समाज में व्याप्त सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक विषमता है। यह विषमता जिस आक्रोश, उत्तेजना, बेचैनी और संघर्ष को जन्म देती है, वह रघुवीर सहाय की कविता का आधार बनता है। वास्तव में रघुवीर सहाय, भारतेंदु निराला, नागार्जुन और मुक्तिबोध की भाषा साधारण है। यह प्रत्येक समय में अनेक समस्याओं से घिरे 'मामूली आदमी की देन है। यथार्थवादी लेखन की प्राथमिक कसौटी उसकी विषय वस्तु की होती है इसीलिए रघुवीर सहाय के निकट की कविता हैं—

''कविता तभी होती है। जब विषय से दूर यथार्थ के
निकट होती है।'
(—लोग भूल गए हैं)

इस दृष्टि से देखें तो रघुवीर सहाय भाषा सजग हैं। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है। परंतु बोलचाल की भाषा का रचना में उपयोग करना अत्यंत कठिन कार्य है। वस्तुतः बोलचाल की भाषा को उसके रोज़मर्रापन से मुक्त कर

भाषिक मुहावरे, खोज करना ही उनके संघर्ष का आधार था। इसके साथ ही आदमी की भाषा में छिपे आवेश को बनाने का प्रयास रघुवीर सहाय करते थे।

वाक्य विन्यास की दृष्टि से रघुवीर सहाय की उपरोक्त कविताएँ हैं। विराम चिन्हों का अभाव पाठक को सांस समाप्त कर देने, ठहर-ठहर कर वाक्य में स्वयं विराम चिन्ह करके ही आगे बढ़ने की अनुमति देती है। सौंदग्रभिरुचियों से मुक्ति पाकर ही हम रघुवीर सहाय की कविताओं का आस्वादन कर सकते हैं, क्योंकि रघुवीर सहाय शमशेर, नागार्जुन जैसे अलग किस्म के कवि हैं।

इसी प्रकार रघुवीर सहाय 'प्रतीकों' का प्रयोग करते हैं। वे हमारे आसपास की परिस्थितियों और परिवेश में परिचित 'प्रतीकों' को प्रयुक्त कर कविता को सार्थक करते हैं। जैसे 'हंसी' का प्रयोग रघुवीर सहाय करते हैं। इसी तरह नामों का भी वे प्रतीक रूप में प्रयोग करते हैं उनकी कविता में दयावती, रामलाल, मैकू मुसद्दीलाल मात्र नाम नहीं हैं वे समाज के गरीब, अभावग्रस्त, शोषित वर्ग के प्रतीक हैं।

रामदास रामलाल, मैकू, मुसद्दीलाल संगीन, पुराने बंधे हुए अनपढ़, शोषित, अपमानित सज्जा-विहीन, शापित लोगों या दरिद्र जन के नाम हैं, जिनकी पुरानी दशा वैसी की वैसी है। खर्च होते हुए अशिक्षित, कमजोर, मामूली संगीता की दशा खराब जैसी पुराने जमाने में थी वैसी अब तक और रहेगी—यही व्यवस्था है।

विषय

रघुवीर सहाय की रचना -यात्रा समाज, लोकतंत्र, तथा साहित्य की यात्रा भी है। इस में सफलताएँ-असफलताएँ, सृजन-विध्वंस, संघर्ष—सभी कुछ दिखाई देता है। आज़ादी के बाद जो भारत बना उसके अभिशप्त रूप रघुवीर सहाय की कविताओं में दिखाई देते हैं।

रघुवीर सहाय मूलतः विकल्प के कवि थे। मूल्य विरोधी उत्पीडनकारी के स्थान पर मूल्यों पर आधारित राजनीति पक्ष, पर लिखते हैं।—वे अंतर्विरोधों, अंधविश्वासों से ग्रस्त, शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था के स्थान पर तार्किक समाज-व्यवस्था को विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कविता यदि मात्र यथार्थ का चित्रण करते मात्र रह जाए तो वह अपने दायित्व का अधूरा निर्वाह ही करती है। इसीलिए रघुवीर सहाय मानते हैं कि 'यथार्थ का विकल्प बताना कविता के लिए आवश्यक है वरना वह कविता ही नहीं।'' सप्तक से विधिवत कविता के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले रघुवीर सहाय, प्रकृति और धीरे-धीरे यथार्थ की जटिलता उनके स्वभाव में परिवर्तन लाती है। सहज जीवनासक्त अभिव्यक्तियों का स्थान व्यंग्य और विद्रूप से भरी कटु उक्तियाँ ले लेती थी। व्यवस्था के प्रति आक्रोश और यथार्थ का गंभीर विश्लेषण उनके हंसों हंसो जल्दी हंसों काव्य संग्रह की पहचान है। स्वातंत्र्योत्तर उत्तर औपनिवेशिक समाज में निरंतर नष्ट होते मूल्यों की खोज 'लोग भूल गए हैं' काव्य संग्रह की आधार भूमि है। कवि रघुवीर सहाय 'कुछ पते कुछ चिट्ठियां' और अपने संग्रह 'समय था' में आकर समाज, राजनीति, तथा साहित्य के मूलभूत प्रश्नों पर कुछ ठहर कर विचार करते हैं। पाठक के साथ-साथ चलकर तो कभी पाठक को आने वाले भविष्य की तस्वीर दिखाकर रघुवीर सहाय अपने मनुष्य जीवसन, साथ चलकर तो कभी पाठक को आने वाले भविष्य की तस्वीर दिखाकर रघुवीर सहाय अपने मनुष्य जीवन, जीवन का दायित्व निर्वाह करते हैं। लोग भूल गए हैं प्रगतिशील धारा को उनका योगदान है।

रघुवीर सहाय की कविताएं–

नेता क्षमा करें :

मैंने कोशिश की थी कि कुछ कहूं उनसे
लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूँ

फिर कुछ लोग उठे बोले कि आइए तोड़ें पुरानी–फ़िलहाल मूर्तियाँ
साथ न दे हाथ ही दे सिर्फ़ उठा

झोले में बंद कर नई मूर्ति मुझे दे गये

यानी कि आप ही देखें कि जो कवि नहीं है
अपनी मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ
और आप कहते हैं कि कविता की है

अपने आप और बेकार :

यही मेरे लोग हैं
यही मेरा देश है
इसी में रहता हूँ
इन्हीं से कहता हूँ
अपने आप और बेकार

लोग लोग लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग
असहाय
उनके बीच में सहता हूँ
उनका दुख
अपने आप और बेकार
ये के अनुसार
देश की व्यवस्था का विराट
व्याप्त है चारों ओर
कोने में दुबक ही तो सकता हूँ
सब लोग जो कुछ रचाते हैं उसमें
केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूँ
वह मैं करता हूँ
किसी से नहीं डरता हूँ
बेकार लोग

नई हंसी :

महासंघ का मोटा अध्यक्ष
धरा हुआ गद्दी पर खुजलाता था उपस्थ
सर नहीं, हर सवाल का उत्तर देने से पेश्तर

बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछें
क्या हुआ समाजवाद
कहे महासंघपति हम करेंगे विचार
आंख मारकर वह हंसे वह,

नई ही तरह की हंसी यह है

पहले भारत में सामूहिक हास परिहास तो नहीं ही था
लोग हंस देते थे

इसमें सब लोग दायें-बायें झांकते
और यह मुंह फाड़कर हंसी जाती।
राष्ट्र को महासंघ का यह संदेश है
जब मिलो मुसद्दी से
खिसियाओ
रिश्ता अटूट है
राष्ट्रीय झेंप का।

लोकतंत्रीय मृत्यु :

दिल्ली का वह दिन था
गरमी थी और हवा थी जो धूप को उड़ाये लिये जाती है।
मौलसिरी के बड़े से पेड़ तले छांह का छितरा हुआ घेरा था
सामने लहराते हज़ार फूलों से डरकर
सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे लोकतंत्र की
मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में

झीना-सा परदा था दोनों के बीच
लोगों के और मौसम के
मैंने उसे हटा दिया
कालातीत चारों ओर से उपर घिर आया
न जीवन था उसमें न मृत्यु थी
सिर्फ़ बेहिसाब असंगतियों की सत्ता
कास्मास की बंद आँखें

अंदर से बाहर को नहीं देखने लगीं
और धूप ने उठा दिया।

इस सृष्टि में उठती गिरती है कोई दूर
थुलथुल नेता की देह में।

छंदमुक्त कविता

छंदमुक्त कविता-दरअसल ऐसी कविता है, जिसमें वाक्य बिना तुक की छंदबद्धता के होते हैं, और गद्यात्मकता के कारण लगभग गद्य के वाक्य लगते हैं। उपरोक्त कवियों की कविता इसी प्रकार की सपाटबयानी की कविता है। इनकी कविता में गरीब, सर्वहारा का वर्णन था। पाठ्यक्रम के इन कवियों के काव्य में गरीबी, भुखमरी, आदि के चित्रण थे।

छायावादी कविता ने अपने जिस रचना-विधान को विकसित किया था, उसका पूरा उपयोग छायावाद के समर्थ कवियों ने कर लिया था...उस तरह के विधान में उसके बाद कविता लिखने का अर्थ था परंपरावादी होना। जनवादी कविता रचना-विधान के स्तर पर ऐसे संघर्ष से थी कि रचना-विधान का बंटाधार हो गया। सियासी दांवपेंच और संघर्ष रघुवीर सहाय व नागार्जुन की कविता में जगजाहिर थे।

इस सबके बावजूद संकट की अनुभूतियों पर जिस शीत-युद्ध का असर पड़ा उसने रचना-संसार में भेदपरक विरोधी खेमों को जन्म दिया जिसके कारण इतिहास और समकालीन समानता और स्वतंत्रता, समाज और व्यक्ति बाध्य और आंतरिक आदि धारणाएँ विरोधी समझी गईं।

मूल्यों या धारणाओं के स्तर पर जो भी विवाद रहा पर जल्दी ही यह समझ में आ गया कि ये विरोधी कहे जाने वाले मूल्य या धारणाएँ (विचारधारा नहीं) थें। सिर्फ विडंबना और विसंगति के वर्णन का टालू रवैया है।

''छंदमुक्त कविता भावबोध के स्तर पर'' सामाजिक यथार्थ-बोध की कविता है। इन कवियों की सोच पुराने छायावादी कवियों की कथन-भंगिमा से भिन्न है।''

छंदमुक्त कविता के कुछ कवियों ने अपने समय की सामाजिक उथल-पुथल को अपने काव्य का विषय बनाया है। अतः कवि को कोमलकांत पदावली का मोह छोड़कर यथार्थ की कठोरता पर उतरना पड़ा है। लेकिन कभी-कभी उनकी अभिव्यंजना की कला को भदेस तक भी ले जाती है। इसलिए वे शासन तंत्र को भंग करने के साथ भाषातंत्र को भी भूलना चाहता है।

छंदमुक्त कविता के कवियों में से कुछ कवि जो अपने को मौलिक और उत्साही साबित करना चाहते हैं, प्रस्थापित मूल्यों को भी अस्वीकार करने में अभिद्या शैली से अभिव्यक्ति का जोश दिखाना नहीं भूलते। यह अतिरेकी उत्साह कविता के स्थूल संप्रेषण में सहायक होने पर भी संगीन दरिद्रता का सूचक होता है और वहीं तक सीमित रहा है। अशोक ने ऐसे कवियों की सतही मुद्रा, फिकरेबाज़ी, चालू मुहावर और पैगम्बराना अंदाज़ को समर्थ कविता के लिए नकारात्मक बताया है। उन्हीं के शब्दों में : जनवादी कवियों में *''रचनात्मक स्तर पर भाषा के संस्कार और उसके प्रति, उदासीनता आई है और अपनी पारंपरिक अनुगूंजों ओर आसंगों से, कवियों के अज्ञान और अरुचि के कारण, कट जाने से काव्य भाषा में—ज़्यादातर कवियों की भाषा में—सपाटता, और दरिद्रता आई है।''*

(*फ़िलहाल,* अशोक)

छंदमुक्त कवि की भाषा शासनतंत्र के साथ संपूर्ण भाषा सौष्ठव पर कब्जा छोड़ना चाहती है। यह देहाती भाषा देनिक देहाती सोच व अनुभव के सपाट, खुरदरी और अनलंकृत होती है। भाषा के प्रयोग में इनको कोई झिझक और संकोच नहीं था। कर्कश और खुरदरी साधारण भाषा इनका अवलंब है। नई कविता के छंदमुक्त के विषय में विस्तार से कुछ कहना आवश्यक नहीं है। भाषा के अभिजात्य संस्कार से बहुत दूर होकर सपाट-बयानी तथा और अनगढ़ वाक्य विन्यास और शब्द योजना ही इस कविता को निधान के लक्षण हैं।''

भाषिक प्रयोगों की दृष्टि से नयी कविता में सपाटबयानी और अस्पष्टता अनेक कवियों में सैद्धान्तिक रूप में स्वीकार्य है। बिम्बों और प्रतीकों के अर्थों के अनेक स्तर इस अस्पष्टता की वृद्धि करते हैं। बिम्बों में सपाटता की सम्भावना और बढ़ जाती है। वर्जित (या ग्राम्य) शब्दों के प्रयोग का फैशन छंदमुक्त कविता के नागार्जुन, शमशेर, रघुवीर सहाय आदि में बहुत चला है। ऐसे प्रयोगों की प्रेरणा भद्रता-विरोधी चिंतन से भी मिलती रही। छंदमुक्त कविता में समाज के प्रति रवैया भिन्न-भिन है। छंदमुक्त कविता में समाज में संकट ने तनाव, घिराव, असमंजस और द्वंद्व के साथ-साथ संघर्ष चेतना विकसित की तो कई जगह इस संकट के फलस्वरूप कुंठाएँ, निरर्थकता-बोध उभरा। रघुवीर सहाय और नागार्जुन को आलोचकों जैसे रामविलास शर्मा ने इनमें प्रमुख माना।

4. नागार्जुन और उनकी कविता

नागार्जुन की छंदमुक्त कविता के कवियों में गणना होती है। आजादी के बाद की हिंदी कविता की धारा के संघर्षों को उन्होंने रूपायित किया। नागार्जुन को आजादी के बाद की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में रखकर ही पढ़ना संभव है। नागार्जुन ने जो लिखा है वो नागार्जुन तक ही हैं। बाकी अलग हैं।

नागार्जुन ने तीर्थ नहीं हो किए। बाद में कुछ समय पटियाला भी रहे। नागार्जुन का विवाह उम्र में 1932 में अपराजिता के साथ हुआ।

नागार्जुन श्रीलंका सिद्धार्थ बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने गए थे। वे जब श्रीलंका में पढ़ रहे थे तभी उन्हें भारत के स्वाधीनता आंदोलन ने अपनी ओर खींचा। उन्हें विचारधारा प्रभावित कर रही थी और किसान आंदोलन खींच रहा था। नागार्जुन के पत्र के जवाब में सहज ने उन्हें लिखा 'वहां अतीत के बिल में घुसे बैठे हो, वर्तमान संघर्ष के खुले मैदान में आओ।' इसके बाद वे श्रीलंका से बौद्ध दर्शन की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर किसान आंदोलन में शरीक होने के लिए भारत चले गए। अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण नागार्जुन को 1939 से 1941 के बीच कई बार जेल जाना पड़ा। बाद में नागार्जुन के आंदोलन में भी जेल जाना पड़ा।

इस प्रभाव से मुक्त होने की या मोहभंग की प्रक्रिया सन् 1962 के बाद शुरू होती है। नागार्जुन उन कवियों में हैं जो मोह के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त थे। योजनाओं और 'समाज नमूने के समाज' के प्रपंच को वे नागार्जुन दृष्टिकोण से देख पाए और इन सबके पीछे निहितविचारधारा को भी समझ पाए।

नाजार्गुन की कविताओं में साम्राज्यवाद समाजवाद, विरोधी संघर्ष से लेकर स्वतंत्र भारत के सपने तक पर्दाफाश है। इसमें भारत की मुक्ति की कामना का स्वर व्यक्त हुआ है तो विश्वयुद्ध और जनता के साथ उभर रहे अंतर्विरोध की अभिव्यक्ति हुई। नागार्जुन इतिहास को नष्ट करने वाले खलनायक भी थे। उनकी कविता में गरीब किसान और मजदूरों के जीवन के चित्र थे। जीवन में व्याप्त असंगतियों और जनविरोधी मूल्यों का चित्रण भी है। नागार्जुन ने पारदर्शी बुर्जुआ नेताओं पर लिखा। उनकी कविता में गाँव की गरीबिनी है कहने का तात्पर्य यह कि नागार्जुन ने समाज के जीवन, प्रकृति, समाज के बदलते स्वरूप, की चुनौतियों का चित्रण किया है।

नागार्जुन के संसार के वैविध्य को समझने के लिए भारतीय समाज और 1947-48 की राजनीति की समझ होना प्राथमिक शर्त थी। उनकी कविता की बुनियादी चिंता जनतंत्र है। जनतंत्र में कौन सी ताकतें बाधक हैं और कौन सी ताकतें बाधक हैं। वह गरीब, अभावग्रस्त है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

नागार्जुन जनतंत्र के कवि हैं। उन्होंने जनतंत्र की ऊब और अंतर्विरोधों का चित्रण किया है। उनके लिए धूमिल की तरह जनतंत्र आधा तेल और आधा पानी नहीं हैं। वे जनतंत्र के अंतर्विरोधों का चित्रण करते हुए वस्तुतः इस झूठ को तोड़ते हैं कि जनतंत्र में सब कुछ ठीक-ठाक है। जनतंत्र की ओट में सक्रिय जनतंत्रविरोधी साजिशों का उद्‌घाटन करते थें। जनविरोधी नीतियों से जनतंत्र किस तरह खोखला हुआ, इस सबका चित्रण करते थे।

उनकी कविता में सादगी, संप्रेषणीयता और सहजता है। नागार्जुन के लिए कविता उनकी फकीरी की जिंदगी का सहज बयान था। आजादी के बाद के दौर की कविता को संप्रेषण की जिस समस्या से दो-चार होना पड़ा था, वह संकट कम से कम नागार्जुन के यहाँ दिखाई नहीं देता। सहजता और सादगी को उन्होंने किसान पृष्ठभूमि से प्राप्त किया। ये वर्ग जनतंत्र, सादगी और सहायता की आदर्श मिसाल थें। ये ही अनपढ़, गरीब वर्ग उनकी कविता के प्रेरणास्रोत थे। उनके लिए जनतंत्र स्वतः प्राप्त होने वाली चीज नहीं है। अपितु उसे संघर्षों में शिरकत करके ही अर्जित किया जा सकता था। उनके लिए जनतंत्र सभी मजबूत होगा जब उसमें हस्तक्षेप किया जाए, जनतंत्र के रखवालों के साथ लड़ा जाए। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन लेखक के साथ्ज्ञ ही साथ खुद जनतंत्र के सक्रिय कार्यकर्त्ता भी थें।

नागार्जुन के कविता संसार को मोटे तौर पर इन कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- राजनीतिक कविता
- प्रकृतिपरक कविताएँ
- सौंदर्यपरक कविताएँ
- सामाजिक जीवन पर केंद्रित कविताएँ

नागार्जुन ने राजनीतिक प्रवृत्तियों पर लिखा है। इनमें में वे कविताएँ आती हैं जो साम्राज्यवाद विरोध के विषयों पर लिखी गई हैं वे कविताएँ आती हैं जो राजनीतिक दलों और उनकी नीतियों पर लिखी गई हैं। वे कविताएं आती हैं जो राजनीतिक घटना विशेष पर लिखी गई हैं। वे कविताएँ आती हैं जो राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखी गई हैं।

नागार्जुन साम्राज्यवाद के विरोध और शोषक वर्ग की नीतियों के विरोध को प्राथमिकता देते हैं। इसी के इर्द-गिर्द नागार्जुन जनता को एकजुट करते हैं। इन कविताओं की अन्य विशेषता है कि ये शोषितों के दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं ओर व्यंग्य की शैली का इनमें भरपूर इस्तेमाल किया गया है। ''नागार्जुन के ये व्यंगय जनता की राजनीतिक चेतना के साथ ही, उसके सतही बोध और जिंदादिली के भी प्रमाण हैं'।

युद्ध के दौरान साम्राज्यवाद की समर्थक और विरोधी, फासीवाद की समर्थक विरोधी शक्तियों के बीच ध्रुवीयकरण तेज हुआ था।

नागार्जुन जैसी राजनीतिक कविता लिखना जोखिम भरा काम था। किंतु उससे भी बड़ा सच यह है कि नागार्जुन के काव्य में ये कविताएँ मील का पत्थर साबित हुई। राजनीतिक कविता सस्ती लोकप्रियता और चुनाव प्रचार के लिए लिखी जाती रही हैं। इस तरह के विषयों पर कविता संभव है यह बात नागार्जुन की कविता ने साबित की है।

नागार्जुन ने भारत आजाद होने के बाद मिली आजादी को कभी असली आजादी नहीं माना, तेलंगाना के सशस्त्र विद्रोह का जिस सरकार ने दमन किया, उसने नागार्जुन की छंदमुक्त को और भी बनाया, नागार्जुन ने लिखा :

आजादी के बाद के शासकवर्गों ने यहां स्वार्थी की नीतियों का पालन किया। इसके कारण आम जनता के बीच में तेजी से जन-असंतोष पैदा हुआ।

आजादी के बाद मोहभंग की प्रक्रिया सन् 1962 के बाद शुरू होती है। इस प्रसंग में 'तुमने कहा था', और 'तुम रह जाते इस साल और' शीर्षक कविताएँ खासतौर पर उल्लेखनीय हैं।

'झुकती स्वराज्य की डाल और
तुम रह जाते इस साल और
हम चावल लाते किलो, दे आते नोट मगर
यों सिकुड़े रहते, सपने में सिलवाते ऊनी कोट मगर
गालियां छलकतीं, बैलों की जोड़ी को देते वोट मगर

आजादी के बाद शासकीय हलकों में वाद झूठा वैचारिक आग्रह था। नेता सत्ता के शिखर तक जाने के लिए बनावटी मंत्र जप कर रहा था। ऐसे में आम जनता में भी गाँधीवाद के प्रति आग्रह बढ़ रहा था। केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, त्रिलोचन के अलावा नागार्जुन ने सबसे ज्यादा इस पर क्रोध असंतोष को व्यक्त करने वाली कविताएं लिखीं। इसके अलावा नागार्जुन ने मखौल उड़ाते व्यंग्य करते हुए व्यंग्य कविताएं लिखीं।

नागार्जुन की कविताओं में जहाँ तात्कालिकता है वहीं पर दूसरी ओर संबंधित विषय के वैचारिक मर्म की सही समझ भी मौजूद है। इस तरह की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए केदारनाथ ने लिखा कि ''नागार्जुन की तात्कालिक विषयों पर लिखी हुई कविताएँ उनकी कविता संबंधी धारणा की ओर संकेत करती है।'' ''(केदारनाथ, खतरनाक ढंग से कवि होने का साहस, आलोचना,) ये कविताएँ उनके छंदमुक्त काव्य का अनिवार्य हिस्सा हैं। नागार्जुन ने राजनीति के चर्चित व्यक्तियों पर इसलिए लिखा कि वे जनता की दिलचस्पी के सामान्यबोध का हिस्सा थे। यथार्थ की ओर वे इसका लाभ उठाते थे।

उन के शब्दों में ''उनकी तात्त्कालिकता ठंडी, बेजान, रोषहीन तात्त्कालिकता नहीं है। वे देनिक, साप्तहिक, मासिक

या वार्षिक घटनाओं पर जब प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं तो उसके पीछे दृष्टि, इशारा तथा इरादा होता है।'' वे जनता का हिस्सा हैं और इस नाते जनता पर रोब गांठना, उसे आदेश देना, उपदेश देना या मूर्ख कहने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। ''जनता उनके यहां सिर्फ करुणोत्पादक, लाचार, असहाय, शोषित नहीं है।... जनता सिर्फ करुणा तथा दया उपजाने वाली स्थिर, जड़, वहां रखी हुई चीज नहीं है बल्कि इकट्ठा होती, समूह बनती, चलती, कभी थककर बैठती लेकिन फिर उठकर बढ़ती। नागार्जुन के यहां जनता गतिशील है। उसका चरित्र परंपरागत गर्वीले का है।

नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं—शोषण तंत्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ और मेहनतकश जनता के संघर्षों के बारे में ये कविताएँ बड़ी मात्रा में हैं। आजादी को लेकर अनेक लेखकों में तरह-तरह के भ्रम थे, अधिकांश लेखक यही सोचते थे कि अब तो हम आजाद हैं और जनता की आजादी देख रहे थे। किंतु नागार्जुन को आजादी के वर्गीय चरित्र को लेकर कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने लिखा झूठ-मूठ सुजला-सुफला के गीत न हम अब गायेंगे। आजादी पर व्यंग्य करते हुए लिखा कि ''कागज की आजादी मिलती ले लो दो-दो आने में।'' आजादी के बाद कोई बदलाव नहीं आया। ऊपर वाले बैठे-बैठे खाली बात बनाते हैं/बाढ़ अकाल महामारी में काम नहीं कुछ आते हैं/देशभक्ति मिल रहीं आए दिन शैतानों को।''

जब सारा देश आजादी की जयंती मना रहा था तब नागार्जुन ने इसके पाखंड का उद्घाटन करते हुए लिखा कि ''निपट गरीबी, और ठाट-बाट की जयंती-शर्म'' न आती, मना रहे वे मंहगाई की जयंती।'' इस तरह के चुनावों का व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने ''अब तो बंद करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन'' शीर्षक लंबी कविता लिखी। साथ ही यह भी लिखा कि ''श्लोकों में गूजेंगे अब की अध्यादेश।'' नागार्जुन ने सन् 1970 से लेकर 1980 के बीच इंदिरा, केंद्र में रखकर जितनी कविताएं लिखी थीं, ये सारी कविताएं जनतंत्र की हत्या के लिए चल रही साजिशों का उद्घाटन करती हैं। साथ ही जनतंत्र के नाम पर चल रहे अपराधीकरण का उद्घाटन करती। इस संदर्भ में नागार्जुन ने लिखा कि ''इसके लेखे संसदा-फंसद सब फिजूल हैं/इसके लेखे संविधान कागजी फूल हैं/इसके लेखे दंडनीति कागजी फूल हैं/इसके लेखे/सत्य-अहिंसा-क्षमा-शांति-करुणा मात्र है। इसके लेखे दंडनीति ही परम सत्य है, ठोस हकीकत/इसके लेखे/ ही परम सत्य हैं, ठोस हकीकत।''

शिवकुमार ने नागार्जुन की कविता के बारे में लिखा है कि ''नागार्जुन की कविता जीवन के विष में ही आकंठ सराबोर कवि की कविता थी। जीवन के विष को उसने भारतेंदु की भांति निर्विकार पिया और पचाया और अमृत दोनों हाथों मनुष्यता के हित के लिए कविता के रूप में उलीचा। प्रेमचंद के साथ वे अकेले रचनाकार थें, जिन्होंने व्यक्तिगत जीवन के कटु और भयावह यथार्थ की मलिन छाया अपने कृतित्व पर पड़ने दी। नागार्जुन ने जितने गहरे और मर्मांतक दुखों को भोगा उसका परिचय खुद की कविता में उन्होंने दिया था।''

नागार्जुन ने राजनीति पर जिस ऊर्जा के साथ कविताएँ लिखीं ठीक उसी तरह प्रकृति पर कविताएँ लिखीं। उनके यहां प्रकृति सहचरी है। उन्होंने लिखा कि ''आधुनिक कवि की कविता जनता की आवश्यकताओं और रुचियों के संदर्भ में अपना स्वरूप ग्रहण कर रही है। अब वह सामंतों के दरबारों से बहुत दूर जीवन के खुले और फलते-फूलते सिवानों में आ खड़ी हुई हैं इसलिए वह इसको नए सिरे से व्यवस्थित करने की कोशिश कर रही हैं।''

नागार्जुन की कविताओं में गांव और छोटे कस्बों के जन-जीवन पर लिखी कविताएँ सबसे ज्यादा हैं। यहां आम तौर पर जो चरित्र हैं वे इन्हीं इलाकों के हैं किंतु इनका दृष्टिकोण कस्बाई नहीं है। इन चरित्रों का दृष्टिकोण है। यह ऐसा दृष्टिकोण है जो आधुनिकतावाद का विरोधी है। यही वजह है कि रचना के जो उपकरण वे चुनते हैं वे सब यथार्थवादी काव्य से आते हैं। वे रचना में परिप्रेक्ष्यहीनता का निषेध करते हैं। वे किसी भी किस्म के प्रभाववादी उपकरण का भी प्रभावोत्पादकता पैदा करने के लिए इस्तेमाल नहीं करते। उनकी अभिव्यंजना के उपकरण एकदम देशज सपाट बयानी से लिए गए हैं।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक रचनाओं का विश्लेषण करते हुए लिखा कि ''वैसे, गांव और विशेषतः अपने गांव की प्रकृति के लिए नागार्जुन की आरंभिक कविताओं में 'नास्टेल्जिमा' की अनुभूति भी मिलती है, किंतु ज्यादातर कविताओं में वे प्रकृति व असलियत के यथार्थ के बीच सामान्य हो जाते हैं।

नागार्जुन ने सामान्यतः कविताएँ लिखते समय साधारण जन, को अभिव्यक्ति की है। यह भावुकता, आवेग, सहजता और यथार्थ के उपकरणों से बना है। इस रूमानियत का दायरा व्यापक है। इसमें गाँव है, शहर है, प्रकृति है, महानगर है, कस्बे हैं, यानी जीवन के वैविध्य का सारा समान यहाँ उपलब्ध है। नागार्जुन की भावुकता समाज के अंदर बढ़ती हुई मायूसी है।

नागार्जुन की कविता में साधारण बोलचाल के तद्भव और लोक भाषा का ही नहीं, अंग्रेज़ी, अवधी आदि के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। नागार्जुन की कविता में शब्दों में बातचीत की शैली भी मिलती है। जैसे—''मैंने सपना देखा, इम्तिहान में बैठे हो तुम मैंने सपना देखा।

विजय के शब्दों में—नागार्जुन शब्दों और वाक्यों की सादगी किंतु गंभीरता के कवि हैं।

नागार्जुन की कविताओं में गद्यात्मकता है उसके पीछे तर्क प्रणाली है। तर्क यह है कि जब कविता में अलगांव और परंपराहीनता का मचा हो तो ऐसे में कविता के जनसंघर्षों से जनता की चेतना के साथ छंद की पुरानी परंपरा को छोड़ना उनकी गद्य कविता का मुख्य लक्ष्य हो गया।

कविता में जनता के जीवन पर पूंजीवाद के दुष्प्रभावों सरीखी बातें कविता के जरिए नागार्जुन उठाते हैं। और कविता को जनता से जोड़ देते हैं। कविता में जो एकरसता है वह नहीं टूट सकेगी और भाषा और पद-रचना की सपाट सादगी में आयेगी कविता जो श्रव्य बन सकने की सामर्थ्य रखती, उस दौड़ में शामिल होकर सामाजिक शून्य का खात्मा करती है। जहाँ फूहड़ तुकबंदियों का विराट घूरा जमता जा रहा है।''

नागार्जुन की कविता की सबसे बड़ी बात है सपाट बयान के लिए वे जीवन के प्रसंगों को सामने लाते हैं साथ ही इसके जिन उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं वे रोचक होते हैं। वे विधान में फूहड़ और सस्ती खराब, तुकबंदियों का प्रयोग करते। अर्थ के उद्घाटन पर उनका ध्यान केंद्रित रहता।

नागार्जुन की कविता का परिप्रेक्ष्य जनता के हितों और खासकर मेहनतकश जनता के हितों से जुड़ा। उनकी कविताएँ बंधनविहीन सपाटबयानी को साकार करती हैं। वे अपनी भाषा के रचनाकार हैं। वे जनता के प्रति प्रतिबद्ध थे। उसके जीवन में लोकतंत्र की साख और अभावों को काव्य रूप देने वाले कवि नागार्जुन थे।

नागार्जुन की कविता में मुक्त छंद के अलावा अनुप्रासों के प्रयोग भी उनके यहाँ मिलते हैं। नागार्जुन के छंद इस्तेमाल के पीछे तर्क प्रणाली है कि जब गद्य-कविता समाज से संबंध रहा हो, जब कविता में अलगाँव और परंपराहीनता का मचा हो तो ऐसे में कविता के जन संघर्षों से जनता की चेतना के साथ छंद की छोड़ना और छुदमुक्त को सामाजिक सरोकारों से जोड़ना नागार्जुन के लिए मुख्य लक्ष्य हो गया।

नागार्जुन उपेक्षित, शोषित, दलित के रहे। गरीब आदमी के सुख-दुख और सरोकारों को उन्हीं की सपाट भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करना—नागार्जुन जैसे व्यक्तित्व के लिए ही संभव था। यही कारण है कि उन्हें 'जन-कवि', 'जनता के सुख-दुख' का कवि कहा जाता था।

अकाल और उसके बाद

प्रतिपाद्यः 'अकाल और उसके बाद' नागार्जुन की किसी भी अकाल पर लिखी कविता भी देश में अनेकों जगहों पर कई बार अकाल पड़ा तो जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। पेट भरने को पर्याप्त अन्न नहीं था, चारों ओर विनाश का स्वर सुनाई पड़ता। लोग पेट की आग बुझाने के लिए औरों को या परायों को मारकर खा जाते थे।

जीवन में आये-दिन की भुखमरी, गरीबों का दैनंदिन का दुःखद जीवन किसी अकाल की भीषणता से कम नहीं है। यद्यपि कविता में साफ-तौर पर यह नहीं कहा गया कि अकाल का कारण प्राकृतिक प्रकोप है या देश के शासन की रीतियां नीतियां।

प्रस्तुत कविता में कहीं भी अकाल के समय की त्रासदी और उसके खत्म होने के अहसास से होने वाली दोनों को अभिव्यक्त किया है। अकाल की स्थिति में घर में चारों ओर उदासी और निष्क्रियता का वातावरण है। अकाल

के कारण चूल्हा नहीं जला, घर में अन्न न होने के कारण चक चलने की आवाज़ तक नहीं सुनाई दी, अतः खाना बनने के परिणामस्वरूप ऊपर उठता धुआँ भी नहीं दिखाई पड़ा। इस दुखद स्थिति से अनपढ़-अशिक्षित मनुष्य ही परेशान नहीं थे वरन् घर के जीव-जंतुओं की हालत भी खस्ता थी, छिपकलियों को भी खाना नसीब न हुआ, चूहे भी भूख के कारण शिथिल हो गये। अकाल ने मनुष्य को भूख के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया परंतु मनुष्य जीवट प्राणी है हर स्थिति से उबरने की कोशिश उसके पास है। भुखमरी ने उसे पस्त तो किया परंतु निराश न होने दिया और वह इस दुःखद स्थिति से निकलने में लग गया। उसका परिश्रम रंग लाया और भूख से उबरने का रास्ता निकल ही आया, फिर से घर में भोजन बनाने के लिए दाने आये और जीवन का चक्र दूसरी दिशा में घूम गया और घर के अंदर चलने लगी, चूल्हा जलने लगा, घर-परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, कौआ भी अन्न पाने में अपने पंखों को खुजलाने लगा।

कवि जीवन की दो विरोधी स्थितियों को अलग-अलग बिंबों के माध्यम से व्यक्त करता है। ये बिम्ब यों तो जीवन की विरोधी स्थितियों को बड़ी सहजता से व्यक्त करते हैं।

कई दिनों ..... कई दिनों के बाद

ससंदर्भ प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां कवि नागार्जुन रचित 'अकाल और उसके बाद' कविता से है। इसमें गरीब, बेबस व्यक्तियों के जीवन में व्याप्त भुखमरी और उससे उबरने का चित्र अंकित किया गया है।

व्याख्या—प्रस्तुत कविता के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें अकाल और उसके बाद, इन दोनों स्थितियों का चित्रण है। अकाल का अर्थ है, अन्न का उपलब्ध न होना। अन्न नहीं मिला तो घर में चूल्हा नहीं जला। चूल्हे का गुण है जलना, इसके विपरीत चूल्हा रो रहा है अर्थात् आंसू बहा रहा है यानि चूल्हे पर अग्नि के बजाय पानी पड़ गया है। अन्न न होने की स्थिति भी कोने में उदास पड़ी है। घर में भुखमरी की स्थिति में गतिविधियाँ रुकी हुई हैं। गतिविधियाँ ही सन्नाटे को तोड़ती हैं परंतु यहां हर तरफ सन्नाटा है। कोई हरकत, चहल-पहल नहीं है यह मनुष्यों के माध्यम से नहीं वरन् वस्तुओं के माध्यम से अभिव्यंजित है। यही कारण है कि सन्नाटा अधिक हावी हो गया है, सन्नाटे की सघनता और गहरी उभर कर आती है। गतिविधियाँ जब शांत हैं, वह चूल्हे के पास नहीं गया, चक्की नहीं चलाई तो जीव-जंतुओं का परिवेश खत्म हो गया। अन्न न आने की स्थिति में, चूल्हा न जलने की स्थिति में उसके पास जाकर सोया, वस्तुतः भुखमरी ने मनुष्य को बेदखल कर दिया। अकाल ने जीवन की परिस्थितियों को अस्वाभाविक बना दिया। अन्न होने की स्थिति में, चूल्हा जलने की स्थिति में भी कुत्ते चूल्हे के पास नहीं, उससे दूर हैं, यह स्वाभाविक स्थिति होती। इस बदलाव का, अस्वाभाविकता का कारण है अन्न का न होना।

अनपढ़, गरीब व्यक्ति ही अन्न बिना परेशान नहीं है वरन् जीव-जंतुओं का हाल भी बेहाल है। छिपकलियाँ दीवारों पर गश्त लगाती हैं परंतु उन्हें कुछ नहीं मिलता । वे चूहे जो दिन भर घर में घूमते थे और अपने हिस्से का दाना चुन लेते थे वे भी भूख से व्याकुल हैं, उन्हें भी पराजय का मुँह देखना पड़ता। इस तरह जीवन के सारे संदर्भ अस्त-व्यस्त थे।

कई दिनों के बाद जब घर में अन्न के दाने आये तो दुःखी, उदास जीवन खुशी से भर उठा; दाने घर में आए तो चूल्हा जला और धुआँ आंगन के ऊपर उठने लगा घर भर की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। चूल्हे में आग और आँखों में चमक जीवन के लौटने का भाव सहज, सार्थक ढंग से अभिव्यक्त कर रहे थें। जीवन-चक्र के परिवर्तित होते ही कौए ने भी पंखों को फड़फड़ाना आरंभ किया। जीवन की परिस्थितियां जीवन पर ही प्रभाव नहीं डालती वरन जो भी उससे जुड़े हैं सभी पर पड़ता था।

विशेष—प्रस्तुत कविता में प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य का चित्रण नहीं है। परंतु अन्न, भोजन, चूल्हा जलाना, ये सारी चीजें मनुष्य संबंधित है अतः मनुष्य पूरी परिस्थिति में विद्यमान है। प्रस्तुत कविता की परिस्थितियों के चित्रण के बिना ही अकाल की विभीषिका आ ही जाती और वह भी बड़ी शब्दावली में। अकाल जीवन को स्थगित करता है और अन्न जीवन में हलचल पैदा करता है। नागार्जुन भारत जन सामान्य के दुःख-दर्द के कवि हैं उन्हीं की दृष्टि से प्रस्तुत कविता में गरीबी का, भुखमरी का साक्षात्कार किया गया। नागार्जुन सपष्टता से बड़ी से बड़ी बात व्यक्त करते। संक्षेप

में हम यही कह सकते हैं कि जन साधारण की ऊब के भावों को जनसाधारण की भाषा में कवि ने अभिव्यक्त किया।

नागार्जुन ने अधिकतर साधारण जनभाषा का प्रयोग स्वयं की तात्त्कालिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने के लिए किया है, हालांकि ऐसी रोषपूर्ण कविताएं स्थायी महत्व की नहीं हैं।

जनवादी भाव-धारा का हिंदी साहित्य-क्षेत्र से उन्मूलन करना कई और कवियों का उद्देश्य था। ऐसी भाव-धारा का प्रचलन करना उनका उद्देश्य था जो प्रगतिवाद का स्थान ग्रहण करे। अतएव, उन्होंने काव्य के विशेष पैटर्न, कला-व्याख्या, कलाकार का धर्म, अनुभूति का सिद्धांत, भाव बोध तथा उससे जुड़ी हुई सभ्यता-समीक्षा इन सबको उपस्थित किया। साम्यवादी-जनवादी प्रभाव का निराकरण इस प्रधान लक्ष्य से ये सारे सिद्धांत अनुप्राणित रहे।'' मुक्तिबोध के इस वक्तव्य का प्रमाण रामस्वरूप द्वारा 'हिंदी नवलेखन के विवेचन से मिलता है जहाँ उन्होंने जनवाद को विदेशी प्रेरणा और प्रभाव से उत्पन्न काव्य-संस्कार कहकर खारिज किया गया। वहीं रचना के स्तर पर यह भी तथ्य था कि ''इस के अंतर्गत बहुत सा साहित्य ऐसा लिखा गया जिसमें विचारधारात्मक व्यर्थ कथन ही ज्यादा थे, अनुभव का विधान नहीं था।